4/80
6/90
7/90

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

मानव मन्दिर

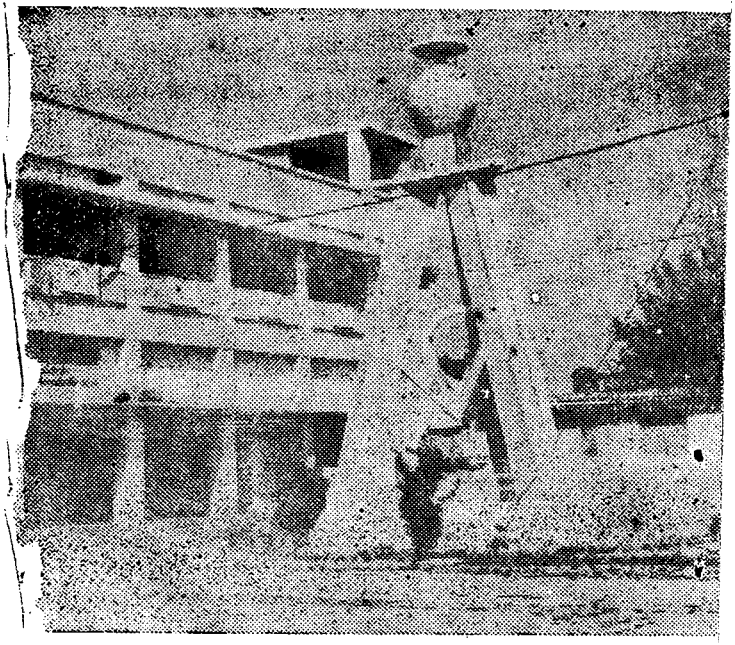

ीर लायब्रेरी चैरीटेबल ट्रस्ट

सतेहरी रोड,

FORM 1

(See Rule 8)

Place of Publication	Hoshiarpur
Date of Publication	10th of every month
Periodicity of publication	monthly
Printer's Name	Dr. Paras Ram Aggarw
Nationality	Indian
Address	Manavta Mandir, Hoshia
Editor's Name	Dr. Paras Ram Aggarw
Nationality	Indian
Address	Manavta Mandir, Sutehri R Hoshiarpur.
Name and address of individuals, who own the Manav Mandir or partners or shareholders, holding more than one percent of the TOTAL	Faqir Library Charitab Trust, Hoshiarpur.

I, Dr. Paras Ram Aggarwal hereby declare tha particulars given above are true to the best o knowledge and belief.

Dated : 10-3-90 Signature of Pubil

Printed and Published by : Dr. Paras Ram at Shiv Dev Rao Press, Manavta Mandir, Hoshiarpu for the Faqir Library Charitable Trust, Hoshiarpu

मानवता मन्दिर में अगला मासिक सत्संग 25-3-90 को होगा।

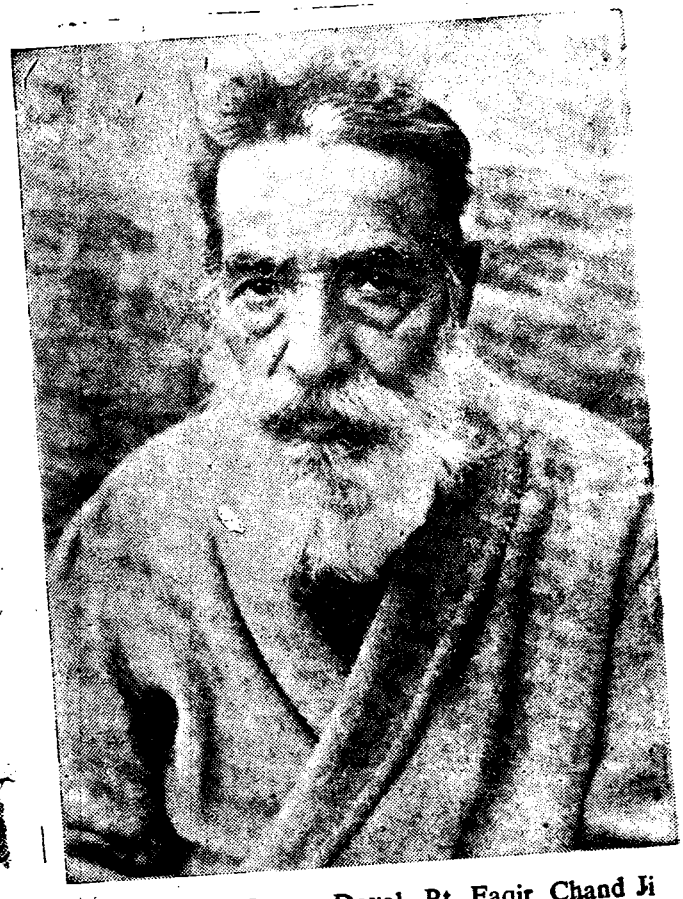

Param Sant Param Dayal Pt. Faqir Chand Ji Maharaj

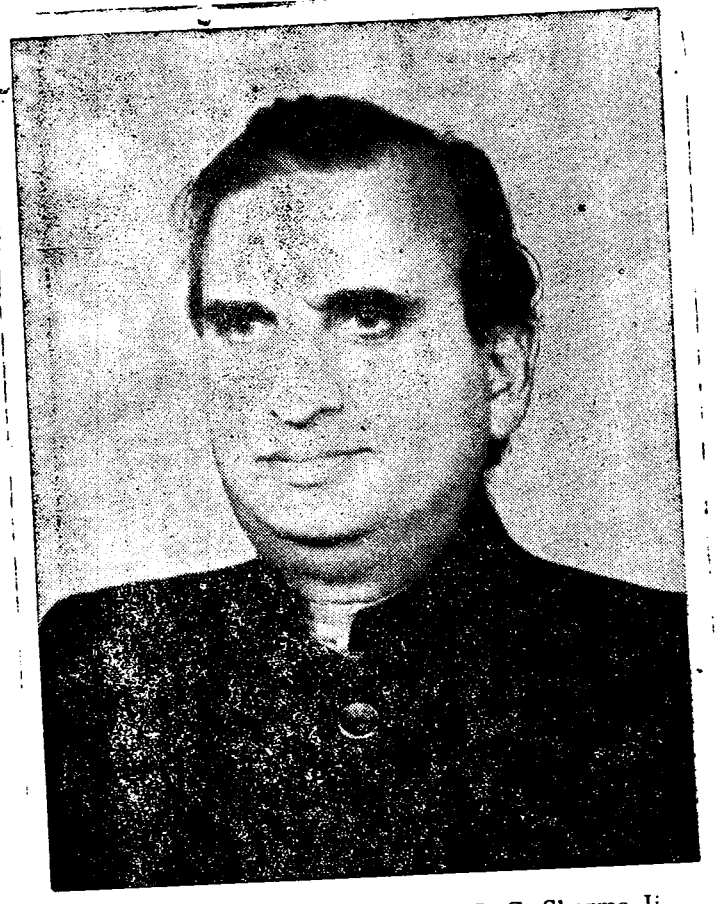

Param Sant Manav Dayal Dr. I. C. Sharma Ji Maharaj

मासिक—

मानव मन्दिर

विश्व में मानव मात्र के सामाजिक, सांस्कृतिक
और आध्यात्मिक कल्याण और विकास की
सेवा में संलग्न मासिक पत्र।

सम्पादक :
डा० पदम राम अग्रवाल

वर्ष 16	शनिवार, 10 मार्च 1990	संख्या 11

बन्धन और मुक्ति

दाता दयाल महर्षि शिवव्रत लाल जी वर्मन का
अगस्त 1925 का सत्संग

(1) जो व्यक्ति बन्धन में नहीं है, उसे स्वतन्त्रता तथा मुक्ति की समझ नहीं होती, यानि कि उसे स्वतन्त्रता तथा मुक्ति की परवाह नहीं होती। जो व्यक्ति बन्धन में फँसा हुआ है और वह बन्धन को दुःख का कारण समझ कर उससे घबराता है, केवल उसीको ही मुक्ति के समझने और प्राप्त करने की जरूरत है।

(2) अब प्रश्न यह है कि बन्धन की अवस्था आखिर हममें आती कैसे है और हम मायाजाल की उलझन में फँस कर अपने आपको दुःखी क्यों करते हैं और फिर उस माया-जाल से घबरा कर मुक्ति को प्रबल इच्छा क्यों रखते हैं ?

वैसे तो कोई भी व्यक्ति यह नहीं चाहता कि वह माया के जाल या जंजाल में फँसे। सभी जीव स्वतन्त्रता चाहते हैं, स्वतन्त्रता को पसन्द करते हैं। फिर वह फँसते क्यों हैं ? इस प्रश्न का उत्तर देना कठिन नहीं, बहुत ही सरल है और समझाने-बुझाने से यह बात साधारण मनुष्य की भी समझ में आ सकती है। जैसे प्रत्येक मनुष्य को स्वतन्त्रता और मुक्ति का अधिकार है, ठीक वैसे ही, उसमें बन्धन में फँसने, फँसाये जाने और फँसे रहने का भी अधिकार है। दोनों बातें बिलकुल स्वाभाविक ही हैं। दोनों में कुछ हद तक समता भी है। यदि एक स्वाभाविक या प्राकृतिक है, तो

दूसरे को भी स्वाभाविक या प्राकृतिक ही होना चाहिए। ये दोनों ही मनुष्य की प्रकृति में हैं और इसकी तह में वासना का तत्व बीज बन कर हमारे जीवन पर अपना प्रभाव डालना चाहता है और डालता ही रहता है। साथ में यह बात भी है कि हम जैसी सुगमता से बन्धन में फँस जाते हैं वैसी ही सुगमता से अपनी इच्छाशक्ति से इस बन्धन से छुटकारा भी पा सकते हैं।

(3) मनुष्य बन्धन में फँसता कैसे है? मनुष्य बाहरी सामान या पदार्थों को देखकर, उन्हें उत्तम तथा सुखदायक समझ कर, उन्हें प्राप्त करने की इच्छा करता है। जितना-२ वह भौतिक चीज़ों को प्राप्त करता जाता है, उसकी तृष्णा बढ़ती जाती है। चीज़ों को प्राप्त करने के बाद, मनुष्य का उन चीज़ों में लगाव हो जाता है, मोह हो जाता है, उनसे गहरा सम्बन्ध हो जाता है इस गहरे सम्बन्ध या मोह का नाम ही बन्धन है। यह मोह एक जंजीर बन जाता है, जिससे मनुष्य के हाथ-पाँव बन्ध जाते हैं और वह बुरी तरह से इतना जकड़ जाता है कि उसके लिए हाथ-पाँव हिलाना भी मुश्किल हो जाता है। इसी बन्धन या कठिनाई से दुःख-दर्द पैदा होता है। जब मनुष्य को जिस वस्तु से गहरा या हल्का सम्बन्ध हो जाता है, उसका बन्धन भी उस सम्बन्ध के मुताबिक गहरा या हल्का होता है। जब मनुष्य को अपने बन्धन का कारण मालूम हो जाता है और समझ आ जाती है, वह धीरे-२ अपनी समझ-बूझ के साथ अपने बन्धन को ढीला करने का प्रयत्न करता है। वह धीरे-२ मुक्त हो जाता है। विवेक के साथ इसी समझ-बूझ और अनुभव से बढ़ने का नाम ही ज्ञान है। बन्धन का कारण अज्ञान है और मुक्ति का कारण ज्ञान है।

(4) अब हम आपको इस बात का दृष्टान्त देकर समझाने का प्रयत्न करेंगे। दत्तात्रेय जी अवधूत और मस्त फकीर थे। वह बड़े ही विवेकी तथा अनुभवी पुरुष थे। वह प्राकृतिक दृश्य से ज्ञान प्राप्त किया करते थे और उसीके अनुसार ही अपने जीवन को विशेष साँचे में ढाला करते थे। एक बार वह जंगल में क्या देखते हैं कि एक चील की दृष्टि एक मांस के लोथड़े पर पड़ी। उसने झपट कर पंजा मारा और मांस को पंजे में दबाये हुए, वह उड़ी। उसे देखकर कई चीलों तथा कौवों ने उस पर आक्रमण किया। लड़ाई होने लगी। कुछ देर तक वह चील सभी का सामना करती रही। परन्तु एक के लिए तो दो ही बहुत होते है, वहाँ तो कई थे। जब उस चील ने अपने बचाव की कोई आशा नहीं देखी तो उसने मांस के लोथड़े को पंजे से छोड़ दिया। लोथड़ा पृथ्वी पर गिर पड़ा। सारे लड़ने वाले पक्षी उस लोथड़े की ओर झपटे और आपस में नोच-खसोट करने लगे। चील एक वृक्ष की डाली पर बैठ कर उस तमाशे को देखने लगी। अवधूत दत्तात्रेय ने उस वृक्ष पर बैठी हुई चील को प्रेम तथा आदर से नमस्कार करके कहा, "ऐ चील! आज तो तूने मेरे साथ गुरु का काम किया है और मुझ पर बहुत उपकार किया है। ज्ञानी इसी ही प्रकार संसार के पदार्थों को त्याग करके उन्हें अज्ञानियों के लिए छोड़ देते हैं और स्वयं मुक्त और विरक्त हो जाते हैं। कबीर साहिब कहते हैं :—

"जो बिषया संतन तजी, मूरख तेहि लपटाये।
जैसे नर के वमन को, स्वान चाव से खाये॥"

अर्थात् "विषय-भोग को महात्मा और सन्त जन त्याग देते हैं, परन्तु मूर्ख उनसे वैसे ही लम्पट हो जाते हैं, जैसे

मनुष्य के वमन (कै की हुई वस्तु) को कुत्ता बड़े चाव से खाने लगता है।

यह बन्धन और मुक्ति का एक प्रसिद्ध दृष्टान्त है।

(5) जब मनुष्य के मन में कोई वासना या इच्छा उत्पन्न होती है, तो फिर वह अकेली नहीं रहती, अपनी सन्तान को बढ़ाने लगती है और जैसे एक से दहाई, सैकड़ा, लाख, दस लाख बनते हैं, ठीक वैसे ही एक इच्छा से सैकड़ों हज़ारों और लाखों इच्छाएँ उत्पन्न होती हैं और मनुष्य के चारों ओर अपना जाल तनने लगती हैं। मनुष्य उस जाल में ऐसा फँस जाता है कि उस जाल के फन्दे से निकलना बहुत ही कठिन हो जाता है और मनुष्य को उस समय तक मुक्ति नहीं मिलती, जब तक कि उसे इनसे उपराम नहीं हो जाता।

(6) जब मनुष्य में जीवन का प्यार आ जाता है, तो उसे मृत्यु का भय सताने लगता है। क्योंकि जीवन के साथ-२ उसे मृत्यु का भी ध्यान आता है। जब मनुष्य में बल के प्रति प्यार आ जाता है, तो उसमें अबलता का आना भी स्वाभाविक है। क्योंकि जहाँ बल है, वहाँ अबल या दुर्बलता भी है। जब मनुष्य सुख की इच्छा करेगा, तो उसे दुःख भी भोगना पड़ेगा। क्योंकि सुख के साथ दुःख भी जुड़ा रहता है। जब मनुष्य शान्ति और अज्ञान का अभिलाषी होगा, तो उसे अशान्ति और अज्ञान का भी सामना करना पड़ेगा। यह बनी-बनाई, समझी-समझायी और सोची-विचारी बात है। इस द्वन्द्वमय संसार में प्रकाश के साथ अन्धकार, आरोग्यता के साथ रोग, अमृत के साथ विष, प्रेम के साथ राग-द्वेष, सन्तुष्टि के साथ भूख-प्यास, दिन के साथ रात, जवानी के साथ बुढ़ापा, धन के साथ निर्धनता, सुन्दरता के

साथ कुरूपता सदैव लगी रहती है।

(7) परन्तु इन बातों को सुनकर घबराना नहीं चाहिए। संसार के जीवन-व्यवहार की ये आवश्यक कड़ियाँ हैं। यदि यह न हों, तो संसार का ढाँचा ही बिगड़ जाये। कोई भी अवस्था सदा कायम नहीं रहती। कालचक्र के साथ-२ अवस्थाएँ बदलती रहती हैं। यदि ऐसा न हो तो मनुष्य को सोचने-विचारने और उन्नति करने का अवसर हाथ ही न आये। इन सबके भीतर मनुष्य की भलाई और उन्नति छुपी है। यदि अशान्ति न हो, तो शान्ति की कद्र कौन करेगा? यदि दुःख, कष्ट तथा आपत्तियाँ नहीं हों, तो आनन्द नाम कौन और क्यों लेगा?

(8) संसार के द्वन्द्व की अवस्था की उपमा या तुलना समुद्र की लहरों से की जा सकती है। समुद्र की लहर ऊपर उठती है, फिर लौट कर या गिर कर समुद्र में ही वापिस मिल जाती है। समुद्र और लहर, दोनों देखने में चाहे भिन्न प्रतीत हों, परन्तु वास्तव में देखा जाये, तो वे भिन्न नहीं एक हैं। लहर तो लहर है, चाहे वह ऊपर की ओर जाये या नीचे गिरे। इसी तरह, मन का भाव तो भाव ही होता है, चाहे वह जैसा रहे। परन्तु साधारण बुद्धि वाले लोगों को यह समझाना बहुत ही कठिन है, समझाये जाने पर भी वे नहीं समझेंगे। यदि तुम किसी व्यक्ति को कहो कि राग और द्वेष एक हैं, तो क्या वह इस बात को मानेगा? नहीं! वह नहीं मानेगा। कोई भी नहीं मानेगा। पुरुष-प्रकृति, स्त्री-पुरुष, जड़ और चेतन को एक ही मानने वाले, करोड़ों व्यक्तियों में एक-दो ही आपको मिलेंगे। परन्तु बात यह सच्ची है कि वे एक हैं। परन्तु ऐसी रहस्य की बात को न तो किसी पर थोपा जा सकता है और न ही किसीका

गला दबा कर जबरदस्ती इसे मनवाया जा सकता है। मन्द बुद्धि वाले तो इसे कभी नहीं समझ सकेंगे। हाँ बुद्धि विकसित होने पर शायद इसे कोई समझ सकेगा। इसलिये बुद्धिमान् मनुष्य सावधान होकर, समय और अवसर की ताक में रहते हैं। जब कुछ समझ-बूझ आ जाती है, फिर समझना-समझाना इतना कठिन नहीं होता। प्रकृति ने इसी काम के लिए द्वन्द्व अवस्था का पहिले से ही प्रबन्ध कर रखा है।

(9) संसार में हरएक मनुष्य सुख चाहता है। मनुष्य जो कुछ भी करता है सब का तात्पर्य यही रहता है कि उसे सुख प्राप्त हो। सुख वास्तव में, एक ऐसा पदार्थ है, जो सभी का लक्ष्य है।

सुख की व्याख्या करना आसान काम नहीं है, क्योंकि जितने भी जीवधारी हैं सभी में न्यूनता या अधिकता के साथ सुख के अनुभव करने का गुण स्वाभाविक है। वनस्पति और वृक्ष इत्यादि चाहते हैं कि उन्हें कोई छेड़े नहीं। कई बार तो वे मनुष्य की उंगली के उठते ही अप्रसन्न हो जाते हैं और अपने पत्तों तथा टहनियों को सिकोड़ लेते हैं। पशुओं की भी यही अवस्था है। वे भी सुख की इच्छा रखते हैं। मनुष्य का तो कहना ही क्या? जैसे-२ मनुष्य की बुद्धि बढ़ती जाती है, वैसे-२ उसकी सुख की इच्छाएँ भी बढ़ती जाती हैं। मनुष्य के सारे कारोबार, चाहे वे कुछ भी हों, परन्तु उन सबका उद्देश्य केवल एक ही है—सुख की प्राप्ति। अब प्रश्न उठता है कि आखिर यह सुख है क्या? यह तो आनन्ददायक शारीरिक सनसनाहट है, जो केवल बहुत ही थोड़े समय के लिए रहती है। इस अस्थायी सुख से, मनुष्य का सन्तुष्ट होना तो दूर रहा, मनुष्य उसी में लम्पट हो जाता है, जिसका परिणाम बहुत बुरा निकलता

है। इसलिये प्रकृति ने सुख के साथ दुःख भी लगा दिया है, जिससे मनुष्य सुख में मग्न होकर दुःख को एकदम भूल न जाये, बल्कि सुख और दुःख दोनों का अनुभव करके, सच्चे सुख या परमानन्द की अवस्था में चला जाये। उस अवस्था में पहुँच जाये, जो सुख-दुःख से परे है। मनुष्य बल चाहता है, अधिकार चाहता है और मान-प्रष्ठिा चाहता है। यह बल क्या है? यह तो केवल सुखदायक शारीरिक या मानसिक ठोसपना है, जो बदलता रहता है, स्थायी नहीं है। बल की इच्छा से सन्तुष्टि तो कोसों दूर रहती ही है और इसका परिणाम भी बुरा रहता है। बलवान् आदमी अर्थात् जिसको बल प्राप्त हो गया, वह व्यक्ति कहीं घमण्डी तथा निर्दयी न हो जाये, इसलिये प्रकृति ने बल के साथ, उसकी उल्टी अबलता या निर्बलता लगा दी है, जिससे मनुष्य दोनों अवस्थाओं का अनुभव करके एक ऐसी परमानन्द की अवस्था को प्राप्त करे, जो बल और अबलता दोनों ही से ऊँची और परे है।

मनुष्य जीना चाहता है मरना नहीं चाहता। यह जीवन क्या है? जीवन इन्द्रियों को सनसनी पैदा करने वाली एक अवस्था है, जो स्थायी नहीं क्षणभंगुर है। इस शरीर को आहार द्वारा बनाये रखने या जीवित रखने का प्रयास किया जाता है। अभ्यास करते-२ भी जीवन की असलियत का ज्ञान होना तो दूर रहा, परन्तु यह गले का हार हो जाता है। जीवन के मोह का परिणाम बहुत बुरा होता है। इसलिये प्रकृति ने जीवन के साथ उसकी परम मित्र मृत्यु को भी साथ लगा दिया, जिससे मनुष्य जीवन से सम्मोहित होकर मृत्यु को भूल न जाय और मनुष्य जीवन और मृत्यु दोनों का अनुभव करके अमरपद को प्राप्त करे, वह अमरपद जो

जीवन और मृत्यु, दोनों से ऊँचा है, दोनों से परे है। ठीक यही दशा बन्धन की भी है। बन्धन क्या है? बन्धन है इच्छा और वासना, जाल और जंजाल, धन, माल तथा असबाब को इकट्ठा करने का लोभ अथवा लालच। इसलिये ही प्रकृति ने जान-बूझ कर निर्धनता, छीनाझपटी और नोच-खसोट का सिलसिला लगा दिया है, जिससे दोनों का अनुभव करके मनुष्य निष्काम और वासना या इच्छारहित हो जाये। इसी बन्धन से छुटकारे का नाम ही मुक्ति, कैवल्य, परमपद, निर्वाण और ध्रुवपद है। वास्तव में यही मनुष्य का निज रूप है :—

चाह मिटी चिन्ता गई, मनुआ बेपरवाह।
जाको कछ न चाहिए, सो ही शहनशाह॥

दीनदयाल

सत्संग परमसन्त परम दयाल पण्डित फकीर चन्द जी महाराज

देहली,
दिनांक : 4-3-72

राधास्वामी !

अबकी बार उबारिये, मेरी अरजी दीनदयाल हो। टेक
आई थी वा देस से हो, भई परदेसन नार।
वा मारग मोहिं भूलिगो, (जासे) बिसरि गयो निज नाम हो।
जुगन जुगन भरमत फिरी हो, जम के हाथ बिकाय।
कर जोरे बिनती करों हो, मिलि बिछुरन नहीं होय हो॥
विषय नदी विकरार है हो, मन हठ करिया धार।
मोह मगर वा के घाट में, (जिन) खायो सुरनर झार हो।
शब्द जहाज कबीर के हो, सतगुरु खेवन हार।
कोई कोई हंसा उतरिहैं हो, पल में देउँ छोड़ाइ हो॥
अब की बार उबारिये, मेरी अरजी दीनदयाल हो। टेक

मैं किसी को सत्संग नहीं कराता, अपने आपको कराता हूँ। बचपन से मेरे अन्तर जो चेतनपना है, उसकी थाह लेने की बड़ी इच्छा थी। वह इच्छा किस वस्तु की थी ? यह तो पता नहीं था किन्तु इच्छा अवश्य थी। जिस संसार में हम रहते हैं, यहाँ हमने देखा है कि निर्धनता है, अनेक प्रकार के रोग हैं कष्ट हैं, कोई अत्याचार करता है, कोई अत्याचार सहता है। कोई मरता है, एवं कोई जन्म लेता है। कोई

सुखी है क्या ? अभी एक माता आई थी, कहती थी, उसका एक चार-पाँच वर्ष का बालक है, जो बोलता नहीं है। किसी का बालक जन्म से अन्धा है। किसी मां के बालक को चेचक निकली हुई है, किसीको कोई कष्ट है। इन दृश्यों को देखकर मुझे निश्चय हो गया है कि इस संसार को बनाने वाला निर्दयी है। पहिले मैं भी इस संसार के बनावे वाले को दीनदयाल मानता था। ठाकुरों की पूजा करता था। मूर्तियों की पूजा किया करता था। उनके सामने गा-गा कर प्रार्थना किया करता था। सगुणरूप से चाहता था कि उससे मिलकर भवसागर से पार चला जाऊँ तथा इन दुःखों से सदैव के लिए छूट जाऊँ।

अब मैं यह काम क्यों करता हूँ ? क्या मुझे धन, मान, प्रतिष्ठा की इच्छा है? यदि कोई इच्छा नहीं है तो यह सत्संग की नई दुकान लगाने की क्या आवश्यकता थी ? संसार में जितने धर्म हैं, उनके हजारों उपदेशक, साधु एवं महात्मा उपदेश देते रहते हैं। फिर मैं क्यों और सत्संग कराता हूँ ? मैं विवश हूँ। मैंने प्रण किया था कि मुझे जो अनभव होगा, वह दुनिया को कह जाऊंगा। केवल यही कारण है। अब मैं उच्च स्वर से कहता हूँ कि जिस शक्ति ने यह संसार रचा है वह निर्दयी है। वह दीनदयाल नहीं है। वह स्वार्थी है। मेरी ऐसी वाणी को सुनकर लोग मुझे नास्तिक और पथ-भ्रष्ट कहेंगे। कहें। मैं आप लोगों को यह बताना चाहता हूँ कि जिसने यह जगत् प्रपंच रचा है उसने हम पर कोई उपकार अथवा दया नहीं की है। आप लोग देखते हैं एक कीड़ा दूसरे कीड़े को खा जाता है। कोई कीड़ा वृक्ष को खाता है और वृक्ष सूख जाता है। वृक्ष में भी जीवन है। हमारी देह में भी करोड़ों कीड़े हैं। जब विरोधी

कीड़े देह में प्रवेश कर जाते हैं, तो हम अस्वस्थ हो जाते हैं। डाक्टर ऐसा टीका लगाता है कि वे मर जायँ। विज्ञान ने इन बातों को सिद्ध कर दिया है। ईश्वर ने मानव को अपने ही नमूने पर बनाया है। वह स्वार्थी है। उसने अपने ही आनन्द के लिए ऐसा किया है। उसने इच्छा की कि एक से अनेक हो जाऊँ। सनातनी और आर्यसमाजी मुझे गालियाँ दें, नास्तिक होने का आरोप लगावें, मेरा विरोध करें। खुदा को मानने वालों को अधिकार है कि वे जो चाहें कहें। मैं आपसे पूछता हूँ, क्या हमको उसने सुख दिया है? क्या हम दुःखी नहीं हैं? हम स्त्री-पुरुष भी उसके नमूने के बने हैं। हम स्त्री-पुरुष भी तो वही काम कर रहे हैं। अपने इंद्रिय-सुख के लिए सन्तान उत्पन्न करते हैं। क्या हम सोचते हैं कि हमारी सन्तान को क्या-क्या कष्ट होंगे? क्या हम भी निर्दयी नहीं हैं? इसमें कौन सी दयालुता है। ईसाई, मुसलमान, सनातनी, आर्यसमाजी अथवा किसी भी धर्म को जानने-मानने वाले मेरी इस बात का विरोध करें।

इस जगत् में दुःख ही दुःख हैं। यह इसलिये हैं कि हमने जो-जो भूलें की हैं, अपराध किये हैं एवं नियमों को तोड़ा है, उसका दण्ड हमको मिला है। हमारे दुःख प्राकृतिक दण्ड हैं। जो लोग संसार के दुःखों से दुःखी होते हैं, वे मेरी तरह किसी वस्तु की खोज में रहते हैं। मुझे उस वस्तु की प्राप्ति दाता की दया से हुई। सच्चे खोजियों के लिए ही इस जगत् में सन्तों का आगमन होता है। सच्चे सन्त दुःखियों को भवसागर से तारने वाले होते हैं। वे ज्ञान देते हैं। किन्तु वे भी पूर्वजन्म अथवा इस जन्म के फल भोगने के लिए विवश होते हैं। इतिहास साक्षी है। ईसा को सूली पर चढ़ाया गया। रामकृष्ण परमहंस को गले का कैंसर हुआ।

सन्त कबीर को दर्दगुर्दा रहा एवं पलटू साहिब को उबलते हुए तेल के कढ़ाहे में फेंका गया। ये सब सन्त, महात्मा अथवा दैवीगुणों से सम्पन्न महापुरुष उसके भक्त थे। उसकी प्रार्थना करने वाले थे। जब उनकी यह दशा हुई तो वह कहाँ का दीनदयाल हुआ! वह कैसे क्षमा कर देगा? वह कैसे जन्म-मरण के चक्कर से बचा देगा? वह दीनदयाल नहीं है। इस स्थिति में क्या तुम उसे दीनदयाल मानोगे? वर्तमान तथा आने वाले युग के बुद्धिमान् यदि उनमें साहस हो तो मेरे विचारों का विरोध करें।

मैं कहता हूँ जो ईश्वर की पूजा करता है अथवा उसकी भक्ति करता है, वह जन्म-मरण के चक्कर से बच नहीं सकता है। हाँ जिस प्रकार एक पिता अपने पुत्र को सब प्रकार से योग्य बनाने पर अपनी सम्पत्ति देता है, उसी प्रकार वह योग्यतानुसार सांसारिक सुख दे देता है। किसीको महान् धनी, किसीको अति दरिद्री एवं किसीको सम्राट् बना देता है। वह उभारनहार तथा दीनदयाल नहीं है। दीनदयाल एवं उभारनहार केवल सच्चा सद्गुरु वक्त होता है। वह युक्ति बताता है। उसकी युक्ति से भवसागर से पार जा सकता है।

कबीर कहता है :—

अबकी बार उबारिये, मेरी अरजी दीनदयाल हो।
आई थी वा देश से, भई परदेसन नार ॥

मैंने सारी आयु उस देश को पाने में खोई है। वह देश कौनसा है? मुझे उस देश का पता नहीं लगता था। आप सत्संगियों से उस देश का पता लगा। वह पता देने वाले सच्चे सद्गुरु तो आप लोग हैं। एक स्त्री यहाँ आई हुई है उसका पति दुर्घटनाग्रस्त हुआ, जिसके कारण उसकी आँख

पर चोट आई। डाक्टरों ने कहा आँख निकालनी पड़ेगी। यह स्त्री मेरे फोटो के समक्ष बैठकर 24 घन्टे रोती रही। कहती है फोटो ने कुछ संकेत भी दिया था। दूसरे दिन डाक्टरों ने कहा आँख ठीक है। यह जो कुछ इस स्त्री के साथ हुआ और अनेक लोगों के अन्तर में मेरा रूप प्रकट होकर काम बनाता है, यह सब सच्चे प्रेम और विश्वास का फल है। यह सब उस कर्तापुरुष की दया है। आपका बच्चा जब रोता है अथवा हठपूर्वक कोई वस्तु चाहता है, तो तुम उसे मिठाई या पैसे आदि देकर प्रसन्न करते हो और समझाते हो कि नहीं? आप लोगों से ऐसी घटनाएँ सुन-सुन कर मुझे विश्वास हो गया है कि मेरे अन्तर में भी जो रूप-रंग प्रकट होते थे वह भी सब कल्पनामात्र थे, मन का खेल ही थे। रंग, रूप को छोड़कर जब आगे जाता हूँ तो प्रकाश और शब्द आता है। अब वह कौन है जो अन्तर में प्रकाश को देखती है और शब्द को सुनती है? वह वस्तु अपने घर से आकर यहाँ परदेसन हो गई है। वह उस घर से आई है, जहाँ काया, माया, नूर और शब्द कुछ भी नहीं है।

कबीर कहते हैं :—

दूर गवन तेरो हंसा हो घर अगम अपार।
नहीं वहाँ काया नहीं वहाँ माया, नहीं वहाँ त्रिगुण प्रसार।
चार वर्ण जहवाँ है नाहीं, ना है कुल व्यवहार।
नौ छै चौदह विद्या नाहीं, नहीं वहाँ वेद विचार।
जप तप संयम तीरथ नाहीं, नाहीं नेम अचार।
पाँच तत्त्व नहीं उत्पत्ती भइलै, सो परलै के पार।
तीन देव ना तेंतीस कोटि, नहीं दसों अवतार।
सोरा संख के आगे होई, समरथ कर दरबार।
सेत सिंहासन आसन बैठे, जहाँ शब्द झंकार।

पुरुष रूप कहाँ वर्णों महिमा, तिन गति अपरंपार ।
कोटि भानु की शोभा जिनके, इक इक रोम उजार ।
क्षर अक्षर दोनों से न्यारा, सोई नाम हमार ।
सार शब्द को लइकै आयो, मृत्यु लोक मंझार ।
चार गुरु मिल थापन हो जग, के हैं कड़िहार ।
उन कर बहियाँ पकड़ रहो हो, हंसा उतारो पार ।
जंबू द्वीप के तुम सब हंसा, गह लो शब्द हमार ।
दास कबीरा अबकी दीहल, निर्गुण के टकसार ।

मैं वहाँ से आया हूँ। इसका पता मुझको पूज्य गुरुदेव दाता दयाल जी की दया और विश्वास आप सत्संगियों से हुआ। क्योंकि मैं कहीं नहीं जाता मेरा रूप तुम लोगों के नाना काम करता है। इस ज्ञान से मेरे जीवन में परिवर्तन आया।

शब्द है :—

क्षर अक्षर दोनों से न्यारा सोई नाम हमार।

इसीलिये मैं कहता हूँ कि मैं अनामी धाम से आया हूँ, मैं ही नहीं तुम सब वहाँ से आये हो। मेरे पास आकर तुम लोग सांसारिक झगड़ों का कहाँ का रहने वाला और तुम कहाँ के रहने वाले ? तुमको भी अपने विश्वास का फल मिल जाता है।

कबीर कहता है :—

सार शब्द को ले के आयो मृत्युलोक मंझार।

मुझे जो जीवनयात्रा में सार प्राप्त हुआ वह कहता हूँ। उस सार को केवल गुरुऋण से मुक्त होने के लिए प्रकट करता हूँ और प्रकाशित भी करवाता हूँ। कबीर कहते हैं, हमने चार गुरु नियत किये हैं। उनकी बाँह पकड़ो, वे भव-सागर से पार करेंगे। वे हैं,

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः॥

गुरु ब्रह्मा है उत्पत्ति का कानून, गुरु विष्णु है स्थिति का नियम, गुरु महेश्वर अथवा शिव है संहार का कानून, गुरु परब्रह्म की शरण में जाने वाला व्यक्ति, इस जगत् के आवश्यक भोग भी प्राप्त कर लेता है और जन्म-मरण के चक्कर से भी बच जाता है। यदि प्रकाश और शब्द को नहीं पकड़ोगे तो तुम अपने घर नहीं जा सकोगे।

कबीर ने कहा है :—

अबकी बार उबारिये,
मेरी अरजी दीनदयाल हो।

सच्चा दीनदयाल तो बाहर का सद्गुरु है। सच्चा सद्गुरु वक्त ही बतलाता है कि जीवन यापन कैसे किया जावे। कैसे ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर और परब्रह्म के नियमों का पालन किया जावे ?

कबीर कहते हैं :—

आई थी वा देस से, हुई परदेसन नार।
वा मारग मोहे भूलिगो, (जा से) बिसर गयो निज नाम।

जिस घर से हम आये उस घर का पता हम भूल गये। शब्द में सद्गुरु से प्रार्थना है कि हमको ऐसा मार्ग बताइये कि हम अपने घर को चले जायें। तुम लोग तो मेरे पास उस घर का मार्ग जानने की भावना से नहीं आये हो। मेरे लिए यह संसार मिथ्या है। तुम इसे सत्य और अत्यन्त प्रिय मानते हो। तुमको नाम कहाँ से प्राप्त होगा ?

कहा है :—

मोह मगर वा कै घाट में,
(जिन) खायो सुरनर झार हो।

यह मोह सारे संसार को खा रहा है। एक दिन संसार से निश्चय ही चले जाना है। यह जानते हुए भी बेटे का बाप को, पत्नी का पति को, चेले का गुरु को एवं भूले-भटके राजनैतिक दलों को कुर्सी का मोह खा रहा है। इस मोह में क्या कुछ नहीं होता है? इस मोह से कोई सद्गुरु ही शब्द-जहाज द्वारा पार करा सकता है। बाबा फकीर को चाय पिलाने से तुमको कुछ न मिलेगा। तुम यदि कुछ प्राप्त करना चाहते हो तो जो सद्गुरु कहे उसे सुनो एवं समझो। समझ कर उसके अनुसार जीवन यापन करो। विधिपूर्वक साधना करोगे तो तुम्हारा बेड़ा पार होगा।

श्री गरुग्रन्थ साहिब में लिखा है :—

"आदिगुरवे नमः, जुगादिगुरुवे नमः सद्गुरवे नमः श्री गुरुवे नमः"। सद्गुरु के वचन जुगादि गुरु हैं, गुरु हैं गुरु के कहे शब्द। मेरा भाव क्या है? मैं यह काम धन अथवा मान-प्रतिष्ठा के लिए नहीं कर रहा। तुम्हारा प्रश्न हो सकता है कि मैं कैसे आया? जिन लोगों ने योगवासिष्ठ तथा रामायण पढ़ी होगी वे जानते होंगे कि राम को राम बनाने में वसिष्ठ का क्या स्थान है? राम को जो वसिष्ठ ने उपदेश दिया और जिस उपदेश से राम को छोटी आयु में ही वैराग्य हुआ उस उपदेश को एकत्र करके जो पुस्तक बनाई गई उसका नाम योगवासिष्ठ है। योगवासिष्ठ का आधा भाग उन विचारों का है जिनके पढ़ने अथवा सुनने से व्यक्ति को वैराग्य हो सकता है। गुरु वसिष्ठ ने कहा राम! तू ब्रह्म का अवतार है। यह गुरु का दिया हुआ साहस ही राम को महान् बना गया। मैं भी जब दुःखी था तो मैं अपने गुरुदेव महर्षि श्री शिवव्रत लाल जी महाराज के पुनीत चरणों में गया और उन्होंने कहा था :—

तू तो आया नर देही में, धर फकीर का भेसा ।
दुःखी जीव को अंग लगाकर, ले जा गुरु के देसा ।।
तीन ताप से जीव दुःखी हैं, निबल अबल अज्ञानी ।
तेरा काम दया का भाई, नाम दान दे दानी ।।

ऐसा व्यक्ति जिसका किसी पर विश्वास नहीं है, न अपने आप पर ही विश्वास है कुछ ग्रहण नहीं करता। विश्वास करने वाले सब कुछ प्राप्त कर लेते हैं। विश्वास करने वाला सबल होता है और विश्वासहीन निबल होता है। मैं सत्संग कराकर निबल, अबल और अज्ञानियों को सत्यमार्ग दिखाना चाहता हूँ। निर्बल को बलवान् बनाना चाहता हूँ। तुम लोग अभी सच्चाई को जानते नहीं हो। उस स्त्री ने जिसने मुझे चार अथवा पाँच रुपये भेंट किये मैं यदि उसके उन पैसों की चाय पी जाऊँ तो कहाँ जाऊंगा? मैं किसी अज्ञानी से पैसा नहीं लेता। ऐसे लोग जो पैसा देते हैं, यदि वह पैसा मैं स्वयं ही उपयोग कर लूँ तो वह पैसा मुझे खा जायेगा। तुम लोग जो पैसा देते हो, वह मानवता मन्दिर में जाता है। उस पैसे से विधवाओं, अनाथों और दुःखियों की सेवा होती है। पुस्तकें प्रकाशित होती हैं, धर्मार्थ दवाखाना चलाया जाता है। मेरे पूज्य गुरुदेव ने जब मेरे विषय में बड़ी-बड़ी बातें लिखीं तथा कहीं तब मुझे कुछ भी पता नहीं था। जिस प्रकार राम को वसिष्ठ ने उत्साहित करके बलवान् बनाया और उसकी आत्मिक शक्ति को जागृत किया उसी प्रकार मेरे पूज्य गुरुदेव मुझे जगाते थे तथा चिताते थे। राम को गुरु-विश्वास वे बल प्रदान किया। राम को बनवास हुआ, सीताहरण हुआ। संकटकाल में सुग्रीव, अंगद और हनुमान जैसे सहायक मिल गये। मुझे संसार में भेजकर मेरी परिस्थितियाँ ही ऐसी बना दीं कि मैं विवश होकर यह काम

कर रहा हूँ। इसीलिये मैं कहता हूँ कि मैं अवतार हूँ।

ऐ मानव यदि तू सुखी होना चाहता है तो तुझे गुरु ब्रह्मा, गुरु विष्णु, गुरु महेश्वर तथा गुरु परब्रह्म की शरण में जाना पड़ेगा। उनके नियमों का पालन करना पड़ेगा। इनकी शरण में जाने से तुम्हें सुख-शान्ति प्राप्त होगी। तुम्हारा जीवन तथा जन्म सुधर जायेगा। गुरु ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि के नियम क्या है? यह तुम्हें बतला दिया है। गुरु ब्रह्मा के नियम की अवहेलना करने से आज बिना इच्छा उत्पन्न की हुई तथा अनावश्यक सन्तान, रेलों की पटरियाँ उखाड़ रही हैं, बसें जला रही है, शासकीय सम्पत्ति नष्ट कर रही है, गुरुजन एवं माता-पिता की अवहेलना कर रही है। प्रकृति का नियम अटल होता है अर्थात् जैसा ख्याल वैसा हाल, जैसी मति वैसी गति, जैसा संकल्प वैसा उसका परिणाम होता है। यह सृष्टि संकल्प से ही बनी है। वेदमार्ग है शिव-संकल्प रखना। यह संसार तो नाशवान् है। तुम्हारी मृत्यु के साथ तुम्हारा संसार जिसे असत्य होते हुए भी तुमने सत्य करके माना है नाश हो जायेगा। "आँख लगी जग डूबा"। 'जो उपजे सो बिनसे'। हम इस बात को माया के वशीभूत होकर भूल जाते हैं कि गुरु शिव का अटल नियम प्रसिद्ध है। संहार अनिवार्य है। यह संसार केवल विष्णु के नियम पर स्थित है। मृत्यु का ज्ञान और भान रहते हुए भी उसको भूल जाना हमारे भय, अशांति और दुःखी होने का कारण है। गुरु परब्रह्म का कार्य है प्रकाश करना अथवा रचना करना। परब्रह्म ही प्रकाश है। हम सब प्रकाश से आये हैं। जिस प्रकार सूर्य इस सृष्टि का कारण है उसी प्रकार अनेक सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी, नक्षत्र तथा लोक-लोकांतर की रचना करने वाला परब्रह्म है। परब्रह्म के देश में जाने के लिए

प्रकाश और शब्द का साधन है। वहाँ जाने से जन्म-मृत्यु के चक्कर से जीव बच जाता है। प्रकाश में चले जाने से अर्थात् लय हो जाने से सदा के लिए मुक्ति नहीं होती क्योंकि यह परब्रह्म की इच्छा है कि वह जब आवश्यक समझे तुम्हें लोकार्थ जन्म लेने के लिए विवश कर दे। वहाँ (परब्रह्म) में जाने की इच्छा किसमें है? इच्छा करने वालों में से कोई करोड़ों में से एकाध उस देश में पहुँच सकता है।

स्वामी जी ने कहा है :—

चार खान चौपड़ जग रची।
अंड जेर सेदज उद्भिजी।
माया ब्रह्म पुरुष पिरकरती।
मन इच्छा खेले शिवशक्ति।

सुरत यदि ब्रह्म में ही रही तो जन्म-मरण रहेगा। प्रकाश में रही तो अन्तिम अवस्था में तो नहीं पहुँच सकेगा। कहा है :—

अंड जेर सेदज उद्भिजी।
माया ब्रह्म पुरुष पिरकरती।
ब्रह्म इच्छा खेले शिवशक्ति।

परब्रह्म अथवा प्रकाश का काम रचना करना है। अपने ही मनोरंजन के लिए वह हमें पैदा कर देता है। उत्पन्न होते ही सुख और दुःख अनिवार्य हैं। मैं पूछता हूँ कि उसने अपने सुख के लिए हमें आपत्तियों में डाल दिया। क्या वह निर्दयी नहीं है? उसका यह रचनाकार्य सतत है, अर्थात् समाप्त होने वाला नहीं है।

कहा है :—

तीन गुणन का पासा लीन्ह।
रजगण सतगुण तमगुण कीन्ह॥

करम हाथ से पासै डार ।
भोग अंक तामैं विस्तार ॥
झूंठी बाजी जानी सच्ची ।
कोई पक्की कोई मारे कच्ची ॥
गई सुरत चौरासी घर मैं ।
भरमत फिरै दुःख और सुख में ॥
हारै ब्रह्म और जीती माया ।
जीव तभी बहु विधि दुःख पाया ॥

अब आप ही निर्णय करिए कि यह झूठी बाजी है अथवा नहीं। मैं तो कहीं जाता नहीं और तुम कहते हो बाबा फकीर आया। उसने यह किया तथा वह किया। आप ही निर्णय करें कि मैं सत्य कह रहा हूँ अथवा झूठ कह रहा हूँ? उसकी रचना ही ऐसी विचित्र है कि हम सब उसमें फँस गये हैं। माया और ब्रह्म खेलते ही रहते हैं। माया वासना है और ब्रह्म प्रकाश है। सूर्य की वासना उसकी किरणें हैं।

कहा है :—

गई सुरत चौरासी घर में ?
भरमत फिरै दुःख और सुख में।

पीर हो, पैगम्बर हो, सन्त हो अथवा फकीर हो कौन है जो दुःख और सुख से बचा हुआ है।

कहा है :—

हारै ब्रह्म जीती माया ।
जीव तभी बहुविधि दुःख पाया ॥

ब्रह्म और माया के खेल में माया कैसे विजयी रहती है? वह मन में संकल्पों को उठाती रहती है और मन उसके अधीन रहता है। मन से मुक्त हुए बिना प्रकाश कहाँ? सोचिये प्रकाश में कितना समय रह सकते हो? उत्थान

अनिवार्य है। माया जीती अथवा नहीं बताओ ? जब मृत्यु का समय आता है और सब कर्म चित्रगुप्त अथवा संस्कार फिल्म की तरह जागृत होते हैं और उस समय भी माया के प्रभाव से वासनाएँ-इच्छाएं जागृत होती हैं। किसी विरले के समक्ष सनातनधर्मियों के धर्म के अनुसार सावित्री तथा राधास्वामी मतानुसार प्रकाश आयेगा। मैं तो कहूगा सनातनियों और राधास्वामियों ने गुरु की बात को नहीं समझा अर्थात् ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ। किसी ने ऐसी बात नहीं कही। हाँ यदि किसी का काम नहीं बना तो लोगों ने कहा वह तो काल का रूप था। काम बन गया तो कह दिया सच्चा सद्गुरु है। आजकल पूजा के अभिलाषी उन लोगों को लाउडस्पीकरों के सामने खड़ा करते हैं तथा अपनी झूठी प्रशंसा का उनसे भोले-भाले लोगों में प्रचार करवाते हैं। कहते हैं सुनो! यह मेरा प्रेमी है, इसका काम कैसे गुरु महाराज से बना है। लोग अज्ञान से अपनी परिश्रम द्वारा अर्जित शुद्ध कमाई का धन ऐसे पुरुषों को भेंट करते हैं। मेरे सत्संग सुनने वालो! याद रखो! बाबा फकीर की देह अवतार नहीं है। जो वाणी मैं कहता हूँ, वह मेरा अनुभव है। मेरी वाणी ही अवतार है। मैंने जो कहा है, उसको ध्यान से सुनकर जो आचरण करेगा, उसके अनुसार अपना जीवन बनायेगा उसको ही लाभ होगा। मेरा ढिंढोरा पीटने से पार नहीं जाओगे। अन्तर का साधन करके ही भवसागर से छूटोगे तथा जन्म-मरण से बचोगे।

"वाणी गुरु, गुरु है वाणी बाणी अमृत सर"
कभी कभी ब्रह्म जीत जो होई।
नर्द लाल होय ब्रह्म घर सोई॥

जिस प्रकार चौपड़ के खेल में, गोट चारों ओर की

यात्रा से निवृत्त हो जाती है, वह गोट पकी हुई मान ली जाती है। वह पकी गोट चौक में आराम करती है। अवसर आने पर खिलाड़ी, प्रतिद्वन्द्वी की गोट को मारने के लिए उसे बाहर ले आता है। ठीक इसी प्रकार मुक्त आत्मा प्रकाश में रहती है। वहाँ से परब्रह्म की इच्छा द्वारा किसी विशेष कर्म करने के लिए वह भी जन्म धारण करती है। ऐसी आत्मा के साथ उसके सहायक भी आते हैं। पुराणों को जिसने पढ़ा अथवा सुना है, वह जानता है, कि कृष्ण के साथ गोपी, गोप, पांडव उनकी कर्मलीला में सहायक बनकर आये। राम के साथ हनुमान, सुग्रीव, लक्ष्मण, अगद आदि आये।

चौपड़ से बाहर नहीं होई।
निज घर अपना पाये न कोई॥

हमारा वास्तविक घर अकह, अगाध, अपार, अनामी धाम है। इसी निर्दयी काल ने यह संसार बना कर हमको फँसाया है। जो गुरु इस काल के चक्र में फँसा होता है वह मूछों पर ताव देकर चेलों को कहता है कि देखा हमने अमुक का कैसा काम बना दिया है। काल तथा माया में सुख दिखाई देता है, किन्तु परिणाम दुःख एवं बन्धन का कारण होता है। जो जीव इसमें ग्रस्त हैं, वे अपने घर जाने के लिए भला कब सोच सकते हैं। जो व्यक्ति इस काल के चक्र को समझ कर इससे दुःखी है, वही अपने घर जाने का विचार कर सकता है। मैं उस स्त्री के पति की आँखों को ठीक कर देने के झूठे मान को नहीं चाहता। यह तो काल ने अपनी पूजा आप कराई है। काल और माया को समझो तथा शब्द और प्रकाश को पकड़ने के लिए नित्य अभ्यास करो। शब्द और प्रकाश के अभ्यास से तुम उस घर जा सकोगे

जिसके लिए बड़े-बड़े जप-तप साधन करने पड़ते हैं। शब्द और प्रकाश से अन्य कोई सुगम उपाय नहीं है। वेदमार्ग ही सर्वसाधारण के लिए उत्तम मार्ग है।

जो जन्म-मरण से छुटकारा पाना चाहते हैं उन्हें चारों गुरु (गुरु ब्रह्मा, गुरु विष्णु, गुरु महेश्वर एवं गुरु परब्रह्म) के नियम पालन करने होंगे, अर्थात् पहिले लोक सुधारना होगा तभी परलोक सुधरेगा।

"अबकी बार उबारिये मेरी अरजी दीनदयाल हो।"

यह प्रार्थना बाहर के सद्गुरु से की गई है। सद्गुरु का क्या कर्त्तव्य है? बाहर का गुरु सद्ज्ञान देता है, सच्ची समझ देता है एवं निश्चयात्मक बुद्धि बना देता है। सद्ज्ञान के पाने के लिए सेवा करनी पड़ती है। तुम धन देना, मिठाई खिलाना, चाय पिलाना एवं गुरु का डेरा बना देना आदि को सेवा समझते हो। यह भी सेवा तो है किन्तु यह सेवा निम्न श्रेणी की है। सच्ची सेवा क्या है?

दर्शन करे वचन पुनि सुने।
सुन सुन कर पुनि मन में गुने।
गुन गुन काढ़ ले तिस सारा।
काढ़ सार फिर करै अहारा।
कर अहार पुष्ट हुआ भाई।
जग भव भय सब गये नसाई।

गुरु की वास्तविक सेवा यह है। इस प्रकार की सेवा के अधिकारी सब लोग नहीं हो सकते। मैं भाग्यवान् था, इस कारण गुरुसेवा समझ में आई और मुझे सद्गुरु प्राप्त हुए। मुझे कहा था :—

कर सत्संग विवेक से गुरु का।
गुरु दयाल हितकारी ॥

साधु बन कर साध ले युक्ति।
जा झूलै से पारी ॥
नर शरीर सुर दुर्लभ पाया।
सत संगत में आया ॥
तेरा दाव पड़ा है पूरा ।
सोच समझ तज माया ॥
अब की चूकै मौज न ऐसी।
त्याग काल की आसा ।
आज का साधन आज ही कर ले।
कल को होगा उदासा ॥

ऐ संसारियो ! मनुष्ययोनि तुम्हें मिली है, धन, सन्तान तथा सम्बन्धियों की हाय-हाय छोड़ो। अपने जन्म को बनाओ। अपने अन्तर में ठहर कर, शब्दब्रह्म को पकड़ो। यदि साधन अथवा अभ्यास न बने तो किसी पूर्णगुरु की शरण में जाओ। शरण में जा कर उनसे समझो। यदि यह समझ में आ जाय कि यह संसार असार है, यह सब है नहीं किन्तु भासता है तो इस ज्ञान के दृढ़ होने से तुम शब्द और प्रकाश में जाने के लिए विवश हो जाओगे। सद्गुरु को सेवा उसका डेरा बनाना नहीं है, जैसे आजकल के गुरुओं ने बना रखे हैं। तुम मेरे पास लौकिक इच्छाएँ लेकर आये हो। परमार्थ के लिए कौन आता है ? मेरी बात तुम मानो न मानो, यह बिवेक, बुद्धि और ज्ञान का विषय है। आचरण करना अथवा न करना इसके लिए तुम स्वतन्त्र हो। मैं गुरुऋण से उत्तीर्ण होने के लिए सत्संग कराता हूँ।

सबको राधास्वामी !

———

सत्संग परमसन्त

सद्गुरु हजूर मानव दयाल

डा० ईश्वर चन्द्र शर्मा जी महाराज

मानवता मन्दिर होशियारपुर, 16-7-89

शान्ति सच्ची सदा, गुरु नाम के सुमिरन में है।
आप जानोगे कि दुःख सुख, खेल सारा मन में है॥
अपने आप में रहो, चित को रहे नित रोकथाम।
शान्ति उसको कहाँ, दिन रात जो अनबन में है॥
वस्तु है घर में तुम्हारे, खोज घर ही में करो।
शान्ति की बस्तु घट के, अपने ही बरतन में है॥
वृत्तियों को चित की, अन्तर में करोगे जो निरोध।
यह समझ लोगे कि, सिद्धि शक्ति सब साधन में है॥
राधास्वामी राधास्वामी राधास्वामी नाम लो।
नाम का विश्राम प्यारे, शब्द के श्रवण में है॥

राधास्वामी !

जब से मनुष्य को होश आया उसने किसी चीज़ की तलाश की। क्योंकि जगत् के अन्दर तो द्वन्द्व है, दोपना है, सुख-दुःख है, गर्मी-सर्दी है। इन दोनों हालतों में मनुष्य हमेशा दुःखी रहा। वास्तव में जगत् के अन्दर सुख़ कम है और दुःख ज्यादा है। यदि मनुष्य को थोड़ा सा भी सुख मिल जाता है, तो वह उसी सुख को समझता है कि मुझे

कुछ मिल गया। मनुष्य कितना भी अपने शरीर को स्वस्थ रखने की कोशिश करे, लेकिन वह फिर भी सुखी नहीं होता। बड़े-२ पहलवान वर्जिश करके अपने शरीर को बना लेते हैं लेकिन उनकी जल्दी ही मृत्यु होती है। वैसे शरीर के स्वस्थ होने में आनन्द है। यदि शरीर स्वस्थ न हो, तो कोई भी काम नहीं हो सकता। केवल शरीर का ही ध्यान रखो, यह ग़लत बात है। शरीर स्वस्थ रखने के लिए पौष्टिक भोजन खाना चाहिए और पौष्टिक भोजन खाने के लिए पैसा कमाना चाहिए। कई लोग ऐसे हैं जिनके पास तन्दुरुस्ती है लेकिन पैसा नहीं है। जिसके पास पैसा है वह घी, दूध नहीं खा सकता। इस प्रकार इस जगत् में दुविधा है। मन की शान्ति तथा मन का सुख किसीको भी नहीं है। फिर भी लोग हर प्रकार का मनोरंजन करना पसन्द करते हैं। कुछ लोग तो बड़े विख्यात तथा शक्ति वाले हो जाते हैं लेकिन उनको तो बिलकुल शान्ति नहीं है। इस प्रकार न तो शरीर को खुराक देने से, न मन को मनोरंजन देने से, न अपनी शान-शौकत को बढ़ाने से तथा न शक्ति प्राप्त करने से, शान्ति नहीं मिलती। शान्ति समृद्धि में नहीं है। जितने भी पैसे वाले देश हैं, उन देशों में आत्महत्याएँ ज़्यादा होती हैं। लोगों को शारीरिक सुविधाएँ होते हुए, मन के सन्तोष के हर प्रकार के साधन होते हुए, पैसा होते हुए भी शान्ति नहीं है। शान्ति का एकमात्र साधन है, परमतत्त्व सर्वाधार सद्गुरु मालिक। मालिक के साथ अपने आपको जोड़ दो। सुमिरन का क्या मतलब है? सुमिरन का मतलब है अपने आपको परमतत्त्व से जोड़ देना। परमतत्त्व सद्गुरु के साथ ऐसा प्यार करना है कि हर जगह सद्गुरु ही दिख ई दे।

तू-२ करता तू भया, मुझमें रही न हूँ।
बलिहारी तेरे नाम की, जित देखूँ उत तूँ॥

शान्ति आपको सद्गुरु के साथ प्रेम करने पर मिलेगी। जिसके अन्दर प्रेम है वही मालिक को या सद्गुरु को याद करता रहेगा। उसे दुनिया में प्रत्येक वस्तु प्रीतम के बिना सूनी दिखाई देगी। यह प्रेम की खासियत है कि जब प्रेम होता है, तो दिल की सब गन्दगी, दिल के अन्दर के सब बुरे भाव समाप्त हो जाते हैं। तो सच्ची शान्ति गुरु के नाम के सुमिरन में है। सुमिरन आप किसी भी नाम का कर सकते हैं, लेकिन राधास्वामी नाम के सुमिरन से आपको निश्चित रूप से शान्ति मिलेगी :—

राधास्वामी गायकर, जनम सुफल कर ले ।
यही नाम निज नाम है, मन अपने धर ले ॥

जब सत्संगी राधास्वामी नाम का सुमिरन पक्का कर, अपने आप में ठहर जायेगा, अपने असली स्वरूप में ठहर जायेगा, तब शान्ति मिलेगी। तुम्हारा अपना स्वरूप अविनाशी है। वह स्वरूप चल नहीं है, स्थिर है। वह समय के गुजरने पर परिवर्तित नहीं होता। निज-स्वरूप स्थाणु अचल है। इसी बात को भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को बताया :—

'अजो नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलो'

क्या तुम्हारी सुरत, आत्मिक स्वरूप 'अजो' पैदा नहीं हुई? शरीर पैदा होता है, मन पैदा होता है, आत्मा भी दुबारा आती है, जाती है लेकिन आत्मा को अनुप्राणित करने वाला, आत्मा को शक्ति देने वाला, आत्मा के आनन्द को अनुभव करने वाला, प्रकाश को देखने वाला, शब्द को सुनने वाला, वह जो अविनाशी तत्त्व है वह अपने आप में परिपूर्ण है। इसलिये जो अपने आप में ठहर जाता है उसे सच्ची शान्ति प्राप्त होती है। प्रेम क्या है? आत्मा की धार के बहाव का नाम प्रेम है। प्रेम या तो ऊपर से नीचे की तरफ

जाता है या नीचे से ऊपर की तरफ जाता है। प्रेम शारीरिक नहीं है। शरीर तो इसलिये अच्छा लगता है कि उसके अन्दर परमतत्त्व है। प्रेम आत्मा की वो धार है, जिसका न आदि है न अन्त है। प्रेम एक जगह समाप्त नहीं होता। जिस प्रकार गंगा की धार गंगोत्री से निकलकर हरिद्वार होती हुई रास्ते में कई नहरें बनाती हुई अन्त में गंगा-सागर में मिल जाती है उसी प्रकार प्रेम आत्मा से निकलकर कई नमूने बनाता हुआ अन्त में परमतत्त्व में विलीन हो जाता है। प्रेम के नमूने अलग-२ हैं लेकिन हर नमूने के अन्दर आत्मा से प्रेम होता है। लोग समझते हैं कि शरीर से प्रेम हो रहा है। प्रेम एक धारा है, एक बहाव है। कभी आप किसी चश्मे को ध्यान से देखो। पानी कभी ऊपर से नीचे आता है कभी नीचे से ऊपर जाता हुआ दिखाई देता है। उसी प्रकार जब प्रेम नीचे से ऊपर की तरफ जाता है अर्थात् छोटे से प्रेम की ओर प्रेम प्रवाहित होता है, तो उसे कहते हैं श्रद्धा। जैसे शिष्य का गुरु के प्रति, पुत्र का माता-पिता के प्रति। इस प्रेम के नमूने को श्रद्धा कहते हैं। श्रद्धा वाले की यह विशेषता होती है कि छोटे को यह आत्म-विश्वास होता है कि मैं किसीका हूँ। मेरा कोई रक्षक है। जब पानी ऊपर से नीचे की तरफ बहता है अर्थात् बड़ों का प्यार छोटों के प्रति होता है जैसे गुरु का शिष्य के प्रति, माँ का बच्चे के प्रति, तो इस प्रकार के प्रेम को कहते हैं—वात्सल्य। इस प्रेम की भी विशेषता है कि कोई मेरा है। इसमें अधिकार होता है माँ अपने बच्चे को स्वयं पीटती है परन्तु दूसरों से नहीं पीटने देती। इस प्यार में कुछ अहंकार होता है। पानी जब न ऊपर जाता है न नीचे आता है बल्कि सीधे तरीके से नदी में बह रहा है—इस प्रकार के प्रेम को कहते हैं स्नेह अर्थात् बराबरी का प्रेम। जैसे भाई-भाई का, मित्र-मित्र का।

अब चौथे पद का प्यार है पति-पत्नी का प्यार। हमारी भाषा में पति-पत्नी के प्रेम को दाम्पत्य रति कहते हैं। पति-पत्नी का प्रेम आन्तरिक प्रेम होता है। यह प्रेम न सिर्फ श्रद्धा है, न वात्सल्य है और न सिर्फ स्नेह है बल्कि तीनों की मिलौनी है। इस प्रेम में तीनों प्रकार के नमूने हैं। पति-पत्नी में कभी श्रद्धा होनी चाहिए, कभी वात्सल्य और कभी स्नेह। पत्नी को चाहिए कि पति की आज्ञा का पालन करे और पति को भी चाहिए कि कभी-२ पत्नी की बात को भी माने। अगर एक ही आज्ञा का पालन करे और दूसरा नहीं करे, तो वह अन्याय है लेकिन इस श्रद्धा में आन्तरिक आत्मिक श्रद्धा होनी चाहिए। यदि पति-पत्नी आत्मा को मानकर के चलते हैं और तब प्यार करते हैं, तो अपने आप ही आदर और सत्कार होगा। पत्नी की श्रद्धा के साथ-२ पति की भी श्रद्धा होनी चाहिए। पति को चाहिए कि पत्नी को हर समय अपने नीचे नहीं समझे। पत्नी को कभी माँ भी माने। संस्कृत भाषा में पत्नी को जाया कहते हैं। जाया का अर्थ है—माँ। कभी-२ जब पति बीमार होता है, तब वह चाहता है कि उसकी पत्नी माँ बनकर उसकी सेवा करे। इस प्रकार के मजमूए को कहते हैं आदर्श दाम्पत्य रति। क्योंकि इस प्रकार के प्रेम में बच्चे के जन्म के बाद पति को यह ईर्ष्या नहीं होगी कि मेरे से प्यार नहीं करती, केवल बच्चे को ही प्यार करती है। बच्चे से तो केवल वात्सल्य ही होगा। इसलिये दाम्पत्य रति हमारे यहाँ आदर्श जीवन-साथी का आकर्षण केन्द्र है। इस दाम्पत्य प्रेम में भी पूरी शान्ति नहीं आती। कभी-कभी दोनों में खटपट होती रहती है। पूरी शान्ति उस प्रेम में है जो तुम्हारा इष्ट के साथ है। इष्ट के साथ जो प्रेम होता है उसे कहते हैं आत्मरति। आत्मरति का अर्थ है—ज्ञात का

प्यार, नाम का प्यार अर्थात् परमतत्त्व से प्यार करना। सिवाय परमतत्त्व के, कोई दूसरा इष्ट नहीं हो सकता। इष्ट के प्यार के अन्दर सारे किस्म के प्यार समाविष्ट होते हैं। अब देखो तुलसी दास जी ने मालिक माना और स्वयं को दास माना। तुलसी दास जी ने कहा है :—

स्वामी सीतानाथ सों, सेवक तुलसीदास।

सूरदास जी ने भगवान् कृष्ण को बालक माना। उन्होंने भगवान् कृष्ण की अनेक बाल-लीलाओं का वर्णन किया है। भगवान् कृष्ण ने कहा है—"मैं पिता-माता-धाता सब कुछ हूँ।" अपने इष्ट को बालक मानो सखा मानो, चाहे मीरा की तरह आत्मिक पति मानो। सद्गुरु का प्यार इष्ट का प्यार होता है। उसके अन्दर सभी प्यार मिलकर के एक सुन्दर नमूना पैदा कर देते हैं। ऐसा नमूना होता है, जिसके अन्दर कभी विकार नहीं आ सकता। इसलिये दाता दयाल जी महाराज ने क्या कहा? असली शान्ति गुरु के नाम के सुमिरन में है। केवल गुरु का ही स्मरण करना है। दूसरे किस्म के प्यार में शान्ति नहीं है। सद्गुरु से प्यार करने पर, आपका शरीर, मन और आत्मा और बुद्धि समत्व में आ जाते हैं :—

राधास्वामी राधास्वामी राधास्वामी नाम लो।
नाम का विश्राम प्यारे, शब्द के श्रवण में है।

इससे पहिले दाता दयाल जी महाराज ने बताया कि योग साधन करने से पहिले चित्तवृत्तियों को मन से निकाल देना चाहिए। मन के अन्दर वासना न रहे, किसी प्रकार इच्छा न रहे, ईर्ष्या-द्वेष न रहे। ऐसा करने से सिद्धि शक्ति आ जाती है। सिद्धि शक्ति का साधन है चित्तवृत्ति अर्थात् चित्त की वृत्तियों से ऊपर उठना। इस चित्त की वृत्ति से सिद्धि शक्ति तो आ जाती है, लेकिन शान्ति नहीं आती बल्कि

अहंकार आ जाता है। कबीर साहिब ने कहा है :—

जोगी जती तपी संन्यासी आप-२ में लड़िया।
कहें कबीर सुनो भाई साधो, शब्द लखै सो तरिया॥

इसलिये कहा है :—

राधास्वामी राधास्वामी राधास्वामी नाम लो।
नाम का विश्राम प्यारे शब्द के श्रवण में है॥

मैंने शुरू किया था :—

राधास्वामी गायकर जनम सुफल कर ले।
यही नाम निजनाम है चित अपने धर ले॥

राधास्वामी हालत में सुख-दुःख, लाभ-हानि नहीं व्यापते। जो व्यक्ति राधास्वामी हालत में है वह किसी से ईर्ष्या, द्वेष नहीं करेगा। उसको हरएक के अन्दर मालिक की झलक दिखाई देगी। राधास्वामी राधास्वामी गायकर का मतलब है कि लगातार हर समय उसी राधास्वामी परमतत्त्व प्रीतम की तरह रहना। प्रीतम दयाल है। यदि आप 24 घण्टे राधास्वामी-२ गाते रहें और दूसरों से नफ़रत और द्वेष करते रहेंगे तो यह राधास्वामी गाना नहीं है। परम दयाल जी महाराज कहते हैं कि निन्दा, ईर्ष्या महापाप है। ऐसे लोगों को कभी शान्ति नहीं मिल सकती। यदि तुम दयाल को प्राप्त करना चाहते हो, तो तुम्हारे अन्दर दयाल के गुण होने चाहिएँ। तुम्हारे अन्दर नम्रता होनी चाहिए। तुम्हारे अन्दर प्रेम होना चाहिए। यदि तुम्हारे अन्दर प्रेम की जगह कठोरता है, ईर्ष्या है, क्रोध है, तो तुम काल हो हो और काल का कोई अधिकार नहीं कि वह दयाल से जाकर कहे कि मुझे अपनी दया दे दो। तुम अपने इष्ट जैसे बनो। इसलिये बार-बार कहा जाता है।

'कोमल चित्त दया मन धारो'

इसके बाद गुरु को भजो। 24 घण्टे राधास्वामी के गाने का मतलब है कि सद्गुरु को 24 घण्टे परमतत्त्व मानो। आपको 24 घण्टे यह ध्यान रहे कि मेरा मालिक पूर्ण है, और वह मेरा है। यदि ऐसा ख्याल रहेगा, तो तुम्हें कभी हानि नहीं होगी। तुम्हारी कमी है, जो तुम पूर्ण गुरु मनुष्य मान लेते हो। इसलिये राधास्वामी अवस्था में 24 घण्टे रहकर तुम्हारा जन्म सफल हो जायेगा। यही निज अवस्था है, निजनाम है। आज का सत्संग इतना काफी है। मैं आप सबको सद्भावना देता हूँ।

राधास्वामी !

खुशखबरी

सभी सत्संगी जन को सूचित करते अति हर्ष हो रहा है कि गत वर्षों की भाँति इस वर्ष भी परम सन्त सद्गुरु हिज होलीनेस हजूर मानव दयाल डा० ईश्वर चन्द्र शर्मा जी महाराज वैसाखी महापर्व के शुभावसर पर अपना परा-आध्यात्मिक सत्संग, 15 अप्रैल 1990 को सायंकाल 3 बजे से 5 बजे तक सलवान पब्लिक स्कूल, पुराना राजेन्द्र नगर, नई दिल्ली में फरमावेंगे। सभी सत्संगी जन सादर आमन्त्रित हैं।

जनरल सेक्रेटरी

पत्र व्यवहार द्वारा ज्ञान

नकल पत्र मेजर बृजलाल जी

पूज्य सद्गुरु पण्डित फकीरचन्द जी महाराज,

करबद्ध राधास्वामी स्वीकार हो।

मैंने जो शब्द और पत्र हजूर की सेवा में दिसम्बर महीने में भेजा था उसका जवाब मिल गया। बहुत ही खुशी हुई। आपने सार समझ, उनमुनी रहनी द्वारा जीवन्मुक्त और विदेहगति को संक्षिप्त और स्पष्ट शब्दों में लिखा है।

एक अन्य राधास्वामीमत के सद्गुरु ने मुझे लिखा है कि इस बाहर के संसार अथवा धरती पर जन्म लेने वाले देवता, अवतार और सन्त मर जाते हैं मगर अन्तर के संसार में सभी जीवित रहते हैं। मगर मेरा अनुभव यह है कि बाहर का संसार हमारा अपना ख्याल है। इसलिये न बाहर का संसार सत्य है और न अन्तर का संसार सत्य है केवल इन दोनों का साक्षी ही सत्य है। पता नहीं मेरी मान्यता कहाँ तक सत्य है।

पिता जी, मान-प्रतिष्ठा के मीठे विष ने बहुत सन्तों को और उनके चेलों को अन्धा कर दिया है। आप जैसे किसी बिरले निष्पक्ष, निर्भय और सच्चे सन्त ने कुछ जिज्ञासुओं को सच्ची समझ प्रदान की है। मैंने भी आपकी संगत से लाभ उठाया है। इस खुशी में आपसे ग्रहण किये हुए ज्ञान को विद्यार्थी के रूप में आपके पवित्र चरणों में नज़म में भेंट कर रहा हूँ।

1. हर दिल में खुफिया ताकत है, जो जीव का हरता करता है,
   कारज सब के आप करे, पर रूप संत का धरता है,

किसी की श्रद्धा कैसी हो, पर संत से क्यों झगड़ता है,
रोटी खा गया बंदर है, बकरी को डंडा पड़ता है,

2. किसी को दवाई बताता है, कहीं बेटी बेटा देता है,
कहीं परचे हल कराता है, कहीं फौज में जाकर लड़ता है,

वैद्य, चेला, पुरोहित, मुल्ला, साधु भी नहीं बनता है,
रूप संत का धार कर, बदनामी संत की करता है,

3. जेलखाना से बरी कराता, जलती आग बुझाता है,
दरयाओं का राह बदलता, साँप का जहर उड़ाता है,
दिल खोलकर नेकी कर प्यारे, पर सच से क्यों तू डरता है,

संत ने तेरा क्या बिगाड़ा, संत का रूप क्यों धरता है,

4. संत कहीं नहीं आते जाते, न संत को पता कोई लगता है,

रूप के इस भूलेखे में, संत को तंग क्यों करता है,
तू ब्रह्मा, विष्णु, शिव बन जा, या और जो तुझ को जचता है,

संत का रूप बना करके, इन्हें बदनाम क्यों करता है,

5. यह दुनिया भोली भाली है, इन लोगों को क्यों ठगता है,

यह चारसौबीस कमाने में, तेरे पल्ले क्या पड़ता है,
तू मालिक है मुखतार है तू, पर संत अरज यह करता है,

संत का झूठ मान बढ़ाकर, संत का नाश क्यों करता है,

6. डेरे गद्दियाँ शाही खजाने, कारें लिये घुमाता है,
यह भूल भुलैयां और से खेलो, संतों को नहीं भाता है,
सेवक शिष्य फकीर का है, जो धोखे में नहीं पड़ता है,
मान प्रतिष्ठा और को दो, सेवक इन से डरता है,

परम दयाल जी महाराज का उत्तर

मेरे बृजलाल राधास्वामी !

आपका खत पढ़ा। जिस दर्जा पर बैठकर आपने खत लिखा मालिक की मुझ पर दया हो गई है, मैं उस दर्जे से आगे चला गया। आपके लिए यह ठीक है। आपकी नज़्म किसी जगह छपवा दूंगा और पत्र भी साथ ही छप जायेगा। आगे आप पर समय आयेगा जब अन्दर और बाहर दोनों का ख्याल समाप्त हो जायेगा। जिस सन्त ने आपको जो उत्तर दिया है वह बेचारा अभी रास्ते में है। अगर यह माना जाये कि संत अवतार मर जाते हैं मगर अन्तर की दुनिया में सभी मौजूद रहते हैं तो मैं यह नहीं कहता कि यह ग़लत या ठीक है मगर एक बात कहूंगा कि अगर यह तमाम अवतार, संत, पैगम्बर और पीर अन्तर की दुनिय में रहते हैं तो जन्म-मरण के चक्कर अथवा आवागमन से नहीं बचे। मैं तो इस ख्याल से अब केवल शरणागत हो गया। न मेरा संत पंथ रहा और न हिन्दु पंथ रहा। मैं किसी पंथ का नहीं रहा केवल शरणागतम्, शरणागतम्। प्रकृति के भेद का मुझे कोई पता नहीं लगा। तभी चाहता हूँ कि ऐ मालिक ! शक्ति दो कि अगर शरीर से निकल कर मैं कहीं जाऊँ तो जिस रास्ते जाऊँ जहाँ जाऊं उसका पता दूं। किसी तरीके से दुनिया को बता सकूँ।

मेरा अनुभव कहता है कि मृतक रूहें, किसी के अन्तर नहीं आतीं। जो कुछ वह कर गये या जो कुछ उनका विचार था वह ब्रह्माण्ड में रहता है। ब्रह्माण्ड में रहने वाले विचार ब्रह्माण्ड में रहने वाले इन्सान के मन में आते हैं। इन्सान समझता है कि फलां मेरे अन्तर आया।

आपका
फकीर

राधास्वामी सहाई

बमरौली विमानस्थल,
इलाहाबाद।
0510 hrs./20-6-89

जगत्पिता मेरे पिता, परम पिता सुपुनीत।
परमतत्त्वमय परमप्रिय चरण धरूँ निज शीश ॥
आशा है, विश्वास है, सत्य सनातन देव।
राधास्वामी रूप तुम, सब देवों के देव ॥
जग जीवन यह धन्य है, जिस क्षण प्रभु का ध्यान।
प्रभु-कृपा परमार्थ सुख, मानवता सम्मान ॥
मानव दयाल को नमन कर, मानवमय जग जाय।
काम आदि षट् दोष सब, स्वयं दूर हो जाय ॥
प्रभु चिंतन संसार सुख, प्रभु सुमिरन सत्कर्म।
मनसा वाचा कर्मणा, निभता मानव धर्म।
सदा सत्यमय प्रभु रहूँ, शिवसंकल्प महान्।
पूर्ण ब्रह्म सुमिरन करूँ, राधास्वामी जान ॥
लिखती जो है अलख सब, हे लेखनी सुजान।
धन्य हुई तू आज है, कर प्रभु का गुणगान ॥
मेरे स्वामी परम हित, परमेश्वर के रूप।
सहज सरल शुभ प्रेममय, सब मानव के भूप ॥
ज्ञाता ज्ञेय ज्ञान सब, सद्गुरु का है चित्त।
चिदाकाश में प्रभु बसें, परमतत्त्व हो नित्य ॥
राग-द्वेष से मुक्त हैं, परमसन्त महाराज।
स्वयं सिद्ध सब हो रहे, मेरे प्रभु के काज ॥
मानवमय यह नाम है, जो कुछ करे बखान।
स्वयं उपजता जा रहा, अति पावन प्रभु नाम ॥
पिता जिसे पाकर सुखी, पुत्र वही है धन्य।
माता का गौरव बढ़े, जग जीवन हो धन्य ॥
क्या कुछ करना जगत् में, सहज योग जब होय।
सद्गुरु के चरणों पड़े, सुलभ स्वयं सब होय ॥

नारायण हैं ढूंढ़ते, सन्तों के दरबार ।
नर वे सारे तर गये, गये प्रेम से द्वार ॥
सन्त हृदय वह लोक है, जहाँ बसें प्रभु आप ।
सन्त रखे निज हृदय में, जो हों उनके दास ॥
यही सुगम अति मार्ग है, अलख लखे न कोय ।
अगम अनामी को लहे, जो गुरु-भक्ति होय ॥
गुरु-भक्ति गुरु-प्यार है, शिष्य हृदय है पात्र ।
भरा लबालब जो रहे, अविरल सुख का लाभ।
पुण्य अनेकों हैं बड़े, सबसे पुण्य महान् ।
श्रद्धा-भक्ति-प्रेम से, सद्गुरु क हो ध्यान ॥
सद्गुरु सब के उर बसे, सब का देखें चित्त ।
जिसमें सरल सहज अमल, विमल विवेकी भक्ति ॥
ऐसे मानव का करें, निज कर से कल्याण ।
भाव-रूप भगवान् हैं, नारायण ही जान ।
पुरुषोत्तम आया जगत्, अबो लो पहचान ।
काल-कर्म की पकड़ से, मुक्त करो निज प्राण ॥
जीव जहाँ से है जुड़ा, जो है प्राणाधार ।
दुःखनाशक जो स्वयं है, जो है सुख दातार ॥
उसको पाकर लोग क्यों, करते नहीं विचार ।
माँग रहे संसार-सुख, करता भव से पार ।
पिता तुम्हीं मेरे स्वयं, तुम्हीं हो मेरी मात ।
भ्राता पुत्र सखा तुम्हीं, जितने नाते तात ॥
तो भी मुझको नाथ है, माता रिश्ता एक ।
तू ही मेरा बाप है, मानवमय अभिषेक ॥
आज यहीं इस वक्त हो, मेरे प्रभु हैं पास ।
अलख लखूं, अगम चलूं, रहूँ अनामी साथ ॥
पूजा प्रभ की भाव से, मानस का है पुण्य ।
पुण्य सुधा स्नान कर, मानवमय है धन्य ॥

—मानवमय
(छविनाथ प्रताप ओझा)

हुजूर नन्दू भाई जी महाराज की साखी

गुरुदेव का अंग

गुरु के चरण सरोज में, कोटि कोटि प्रणाम ।
गुरु के पद में मुक्ति पद, सत पद धुर पद ठाम ॥
गुरु बाणी सत मानसर, मैं तो हंस सरूप ।
अमृत पान सदा करूं, त्याग भरम भव कूप ॥
गुरु बाणी सुख दायिनी, निर्वाणी निज सार ।
बोलूं तो गुरु बचन नित, महा अगम आसार ॥
गुरु संगत जग दुःख मिटा, सूझा अलख अरूप ।
गुरु में गुरु पद तत्त्व सब, गुरु सत मत के भूप ॥
ब्रह्मा विष्णु महेश सुर, निगम अगम सद् ग्रन्थ ।
गुरु पद नख में सब बसें, वेद शास्त्र शुचिपंथ ॥
ईश ब्रह्म अवगत कला उनमुनि लगी समाध ।
जब मस्तक गुरु पद झुका, पाया अगम अगाध ॥
सगुण अगुण गुण संपदा, माया ब्रह्म विचार ।
गुरु संगति मिल सब लखें, तज अविवेक विकार ॥
सहस कंवल दल जोति ले, त्रिकुटी ओम् स्थान ।
सुन्न भंवर सत धाम गति, गुरु के बचन निशान ॥
शब्द अशब्द अनाम अज, अद्भुत विमल प्रकास ।
एक गुरु के बचन में, बास सुआस सुपास ॥
विज्ञानी ज्ञानी जती, जोग जुगति के दाव ।
बिन गुरु मर्म न पावहीं, कोटिन करैं उपाव ॥

जप तप संयम बहु किये, घूमे देश विदेश ।
भटक भटक भटकत मरे, बिन गुरु के उपदेश ॥
विद्या बुद्धी चातुरी, झूंठा वाद विवाद ।
गुरु पद मिल सबको तजा, लागी सुन्न समाध ॥
भर्म मिटा संशय गया, खुली मर्म की खान ।
जड़ चेतन ग्रंथी खसी, जब पाया गुरु ज्ञान ॥
पढ़ लिख दुविधा में फँसे, मन तो भया अशान्त ।
जब आये गुरु चरण में, बुद्धि भई निर्भ्रान्ति ॥
तोरथ में पाखान जल, बन पर्वत दुःख धाम ।
बिन गुरु कृपा न गम लखे, मिले न सत सत नाम ॥

साधु समान न कोइ सगा, संत समान न मीत ।
गुरु सम हितकारी नहीं, लखै न प्रेम प्रतीत ॥
विद्या पढ़ पंडित मुए, अटके माया जाल ।
ज्ञान कथत ज्ञानी थके, शब्द जाल जंजाल ॥
वेद पढ़ा तो खेद अति, शास्त्र शासना पाय ।
ऐसा कोई ना मिला, सहजे लेय छुड़ाय ॥
ऐसे तो सतगुरु मिले, दीन बन्धु सुदयाल ।
बाँह पकड़ खींचा उधर, आप ही लिया सँभाल ॥
हाथी अटका कीच में, केहि बिधि निकसै आय ।
जितना बल पौरुष करे, उतना ही धँस जाय ॥

निज बल त्याग भरोस गुरु, आस कुआस निरास ।
प्रगटे पल में सतगुरु, छुटा फंद से दास ॥
ऋद्धि सिद्धि नौनिद्धि सब, माया ही के भर्म ।
सिध साधक भूले सकल, लखा न निज पद मर्म ॥
उरझ उरझ उरझे महा, अब सुरझावे कौन ।
सुरझावन हारा गुरु, करै जो संगत गौन[1] ॥ (१) जाकर

ना विद्या ना बाहु बल, ना मन में हंकार ।
ना भक्ति ना प्रीति रुचि, सत गुरु करो उद्धार ।।
गुरु से कोई नहिं बड़ा, यह जाना अब जान ।
गुरु चरनन पर वारिया, देह गेह मन प्रान ।।

गुरु से भेद जो मिल गया, शीश उतारा आप ।
चरण शरण बल बल गये, मिटा देह का पाप ।।
मानुष जनम अमोल था, नहीं तोल नहीं मोल ।
सुफल भया जब गुरु मिले, सुने जो अद्भुत बोल ।।
एक आस गुरु चरण की, एक भरोसा मन ।
एक दास की बीनती, एक ही प्रेम जतन ।।
प्रेम गुरु से कीजिये, गुरु जो करें सहाय ।
जो गुरु शरणागत भया, फिर नहिं भटका खाय ।।
आप मिले आप ही कहा, आप ही लिया बुझाय ।
आप आप मिल आप है, आप आप समझाय ।।
गुरु समुद्र है अगम अति, लहर देव मन बूंद ।
ईश ब्रह्म है धार सम, जीव जंतु सब बुंद ।।
प्रगट प्रगट प्रगटा प्रगट, आप के जीव काज ।
अब तो मैं गुरु का भया, त्याग जगत की लाज ।।
गुरु तड़ाग में कमल जिमि, शोभा पाया आय ।
जग में फैली बास भलि, गुरु चरणन बल पाय ।।
गुरु तो चन्द्र सरूप हैं, मैं चकोर बलवान ।
पल पल गुरु मूरति लखूं, कहीं और नहिं ध्यान ।।
गुरु गम सिंधु अगाध हैं, करूं सदा असनान ।
त्यागूं जग का मैल सब, पाऊं गति मति ज्ञान ।।

मानव जी

सुनो सत्संगियो आए हैं, आए यां पे मानव जी,
बिलखते संगियों की, सुनके आहें आए मानव जी।
बहुत लम्बा सफर तय करके, आए हैं यह मानव जी,
हमारी कथनी को करनी, बनाने आए मानव जी।
नज़र ऊँची करो समझो, किधर आए हैं मानव जी,
हमारी रहबरी करने, इधर आए हैं मानव जी।
बासमझों को नज़र आयेंगे, मानओ रे मानव जी,
गुरु की होगी गर रहमत, समझ आयेंगे मानव जी।
शहंशाहे दो आलम है, मैं कहता हूँ हैं मानव जी,
बना देते हैं दुनिया दीन, दोनों आके मानव जी।
गुरु आज्ञा के पालक, देखो देखो हैं ये मानव जी,
समुन्दर पार जाते, और फिर आते हैं मानव जी।
सुधारक बन गए, सच्चे हमारे प्यारे मानव जी,
चेताते पिण्ड और, ब्रह्माण्ड की बातें हैं मानव जी।
निबल अज्ञानी जीवों पर, दया करते हैं मानव जी,
बता कर राज़ पोशीदा, जगा देते हैं मानव जी।
भरम परदा हटा दो, तब नज़र आयेंगे मानव जी,
हमारी शकल हम जिन्सी पै, समझाते हैं मानव जी।
ऐ इन्सां मान लो औतार है, परब्रह्म मानव जी,
लाहस्ती आ गई है, रूप खुद ही बन के मानव जी।
नमूना बन के तुम आओ, बताते हैं जो मानव जी,
पहुँच जाओगे मंज़िल पर, चेताते हैं जो मानव जी।
कमी को अब तेरी "मोहन", मिटा देंगे ये मानव जी,
मिला देंगे इस कतरे को, समुन्दर से ये मानव जी।

आचार्य "मोहन दयाल" (के. एम. श्रीवास्तव)
फकीर सत्संग केन्द्र, मिसरिख तीर्थ (सीतापुर)

बहुरूपिया

एक दिन देखा था मैंने, हाट में बहुरूपिया।
रूप बहुतेरे बनाकर, आता था बहुरूपिया।
वो कभी साधु, कभी मजनू बना बहुरूपिया।
वो कभी पण्डित, कभी मूरख बना बहुरूपिया।
देख कर सब दंग थे, बहुरूप था बहुरूपिया।
खुद को ज़ाहिर करने को फ़नकार था बहुरूपिया।
सोचने को मैं विवश हूँ, क्या है यह बहुरूपिया।
आया अन्दर से यह उत्तर, सब जगत् बहुरूपिया।
जीव बनकर आप आता, गर्भ में बहुरूपिया।
फर्श ख़ाकी पा के देखो, बढ़ता है बहुरूपिया।
बाप, बेटा, बाबा, पोता, सब है यां बहुरूपिया।
माता, बेटी, दादी, पोती, सब है यां बहुरूपिया।
दोस्त, दुश्मन, चोर, हाकिम, सब है यां बहुरूपिया।
क्या गुरु, चेला, भगत, भगवान भी बहुरूपिया।
जिस तरफ डाली नज़र, हर सिम्त है बहुरूपिया।
जड़, चेतन, जग जीव सारे, हैं भई बहुरूपिया।
ज़ाते मुतल्क़ भेष रखकर, आया था बहुरूपिया।
श्री मस्त राम के घर में आकर, खेला था बहुरूपि
भूले भटके को चेताता था, सदा बहुरूपिया।
अपना अनुभव ज़ाहिर करता था यहाँ बहुरूपिया
मानवता की नींव रखने आया था बहरूपिया।
मानवता का झण्डा ऊँचा कर गया बहुरूपिया।

था फकीरों में फकीर एक, नामवर बहुरूपिया।
मानवता मन्दिर बना, रुपोश है बहुरूपिया।
मैंने सुन ली ग़ैब से आई सदा बहुरूपिया।
ज़र्रा, ज़र्रा में निहां है, हर जगह बहुरूपिया।
बात यति झीनी मेरी है, समझो यूं बहुरूपिया।
आँख बातिन खोलकर, ढूँढ़ो यहाँ बहुरूपिया।
द्वन्द में तुम मत पड़ो, परखो यहाँ बहुरूपिया।
मंच पर डालो नज़र, निरखो यहाँ बहुरूपिया।
भेष भूषा चेंज कर, मसननदशीं बहुरूपिया।
जल्वा देखो, जल्वागर है, आप खुद बहुरूपिया।
आई. सी. शर्मा विराजे हैं, भई बहुरूपिया।
या कहो फकीरमय मानव बने बहुरूपिया।
रूप इनका कुछ नहीं, बहुरूप है बहुरूपिया।
सत्ता मालिक एक है, हर जुज़ब कुल बहुरूपिया।
कह रहा "मोहन" यह सबसे, राधा है बहुरूपिया।
और है आधार उसका, स्वामी भी बहुरूपिया।
राधा स्वामी एक जब होते हैं, सुन बहुरूपिया।
कहना सुनना सब खत्म, होता है तब बहुरूपिया।
इसलिये राधा व स्वामी, एक कर बहुरूपिया।
है अलख, अगम, अनामी, मौन हो बहुरूपिया।

आचार्य "मोहन दयाल"
(के. एम. श्रीवास्तव) फकीर सत्संग केन्द्र,
मिसरिख तीर्थ (सीतापुर) यू. पी.

राधास्वामी जनरल सत्संग केन्द्र हनमकुण्डा [आ० प्र०] के ३६वें सन्त सम्मेलन १९९० की रिपोर्ट

पूर्णधनी हजूर दाता दयाल महर्षि शिवव्रत लाल जी महाराज ने, अपने दौरे के सिलसिले में 1919 में इस स्थान पर पधार कर, इस भूमि को न सिर्फ अपने कमल-चरणों से पवित्र कर दिया, बल्कि वह आज एक पुण्य-क्षेत्र और तीर्थ-स्थान बन गया है। हजूर दाता दयाल जो अक्सर यहाँ आकर कयाम फर्माते, सत्संग कराते और यहाँ नीम के दरख्त के करीब कमरे में बैठकर किताबें लिखा करते थे। दयाल स्वरूप हजूर नन्दू भाई जी महाराज भी उनके साथ रहा करते थे।

हजूर दाता दयाल जी महाराज के बाद हजूर नन्दू भाई जी महाराज अपनी अपार दया से इस केन्द्र पर अक्सर आते, सत्संग कराते और सत्संगियों की शंकाओं का समाधान करते थे। हजूर भाई जी महाराज का बहुत बड़ा अहसान है। यों तो उन्होंने इस केन्द्र की वृद्धि में बहुत बड़ा योगदान दिया। आज से 36 साल पूर्व हजूर परमसन्त परम दयाल पं० फकीर चन्द जी महाराज को हनमकुण्डा में सत्संग देने के लिए आमन्त्रित करने श्री ठाकुर शंकर सिंह जी होशियार-पुर गये और हजूर परम दयाल जी महाराज से यहाँ पधारने की प्रार्थना की, जिसको हजूर परम दयाल जी महाराज ने

सहर्ष स्वीकार कर लिया और हर साल वसन्त पर, अपनी वृद्धावस्था का लिहाज़ किये बगैर, हज़ारों मील की यात्रा तै करके, यहाँ आते रहे। उन्होंने अपनी शिक्षा, साहस और सत्संगों द्वारा आन्ध्र प्रदेश के प्रेमियों, सत्संगियों और आम जनता में एक नई जागृति पैदा कर दी, और उनके शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक जीवन में परिवर्तन पैदा कर दिया और लाखों लोगों को फैज़याब किया। यहाँ दयाल स्वरूप हज़ूर नन्दू भाई जी महाराज को हर्गिज़ भुलाया नहीं जा सकता, क्योंकि उनकी ही अपार दया, रहनुमाई, हिदायात और हिम्मत की बजह से ही आज इस पुण्य-क्षेत्र की यह शोभा नज़र आ रही है।

परमसन्त हज़ूर परम दयाल पं० फकीर चन्द जी महाराज ने अपने मिशन को जारी रखने के लिए, परमसन्त हज़ूर मानव दयाल जी महाराज को अपना कार्य-भार सौंप दिया। चुनाँचे, वे भी हज़ूर परम दयाल जी महाराज की तरह हर बर्ष वसन्त पर यहाँ पधार कर सत्संग के द्वारा अपने पवित्र विचार प्रकट करते हुए ज्ञान की गंगा बहा रहे हैं। उनके सत्संगों के कारण बहुत से आन्ध्र प्रदेशवासियों के जीवन में मानवता की भावनाएँ निरन्तर जाग रही हैं और एक नया परिवर्तन आ रहा है। दुःखियों के दुःख निवारण हो रहे हैं।

दुःखी जगत् को देखकर, उमड़ी दया विशाल।
परम सन्त का रूप धर, प्रगटे मानव दयाल॥

मालिके कुल का लाख-लाख धन्यवाद है कि हज़ूर दाता दयाल जी महाराज के इस पवित्र केन्द्र पर होशियारपुर (पंजाब) से हज़ूर मानव दयाल जी महाराज, दिल्ली से आचार्य केशव प्रसाद वर्मा जी, उत्तर प्रदेश से आचार्य कृष्ण मोहन तिवारी, हैदराबाद से पूज्य श्याम राव जी पधारे हैं

और अपने पवित्र विचारों से उन्होंने सत्संगी जन को कृतार्थ किया है।

यहाँ यह बात क़ाबिले ज़िक्र है कि सत्संग के मौकों पर महिलाओं में प्राय: गड़बड़ हुआ करती थी, किन्तु इस बार, महिलाओं की तादाद अत्यधिक होने के बावजूद भी, बड़े सुकून और शान्ति से सत्संगों में प्रवचनों का श्रवण किया गया। श्रीमती श्यामला बाई (रानी बाई साहिबा) ने जो मकान इस केन्द्र को बज़रिये वसीयत वक़्फ़ कर दिया था, यहाँ की संस्था ने यह मुनासिब ख्याल किया कि इसे बेच कर इसी केन्द्र में उनकी स्मृति में एक विवाह-भवन (जंजघर) तामीर किया जाये। चनाँचे, इस साल हुजूर मानव दयाल जी महाराज ने अपने पवित्र कर-कमलों से इस भवन का शिलान्यास कर दिया है। आशा है कि अगले साल वसंत पर विवाह-भवन का उद्घाटन भी सम्पन्न हो जायेगा।

इस वसन्त पर सन्त सम्मेलन की सफलता के लिए जिन प्रेमी सज्जनों ने हमारा हाथ बटाने की कृपा की है उनके प्रति हमारी संस्था अत्यन्त आभारी है। हो सकता है कि सम्मेलन के प्रबन्ध में संस्था की तरफ से कोई भूल-चूक हो गई हो; उसके लिए हम विनम्रतापूर्वक क्षमा-प्रार्थी हैं।

मन्त्री
राधास्वामी जनरल सत्संग केन्द्र
हनमकुण्डा (आ० प्र०)

हजूर मानव दयाल जी महाराज के वसन्त तथा महाशिवरात्रि सत्संग दौरे की विशेष सूचना

लेखक
आचार्य शब्दानन्द, मानवता मन्दिर, होशियारपुर

सत्संग दौरे की विशेष सूचना देने से पूर्व मैं आपको यह बताना चाहूंगा कि परम पुरुष, परमधनी, परमसन्त, परमतत्त्व के अवतार, दाता दयाल महर्षि शिवव्रत लाल जी महाराज 23 फरवरी 1860 महाशिवरात्रि के दिन इस जगत् में प्रकट हुए थे और 23 फरवरी महाशिवरात्रि के दिन 1939 में ही उन्होंने प्रातःकाल एक मन गाय का दूध मंगाया। उस दूध से स्नान करके कुछ घण्टे तक समाधि लगाने के बाद, चोला छोड़ दिया था। इस वर्ष फिर 23 फरवरी को महाशिवरात्रि का पर्व आया है और 1990 में आज दाता का 130वाँ जन्मदिवस है। इस शुभ अवसर पर परमसन्त, परम पुरुष, पूर्णधनी, सद्गुरु वक्त, हजूर मानव दयाल जी महाराज ने अपने दादा गुरु के 130वें जन्म दिन के उपलक्ष्य में उनके ही राधास्वामी धाम पर बड़ी धूमधाम से इस उत्सव को मनाने का फैसला किया और वहाँ की प्रबन्धक कमेटी को लिख दिया कि 22, 23 तथा 24 फरवरी को राधास्वामी धाम पर सब सत्संगियों को आमन्त्रित किया जाये और शानदार भण्डारा किया जाये। भण्डारे के लिए उन्होंने पाँच हज़ार रुपया पहिले ही भिजवा दिया था।

प्रबन्धक कमेटी ने हजूर मानव दयाल जी की आज्ञा का पालन करके, बड़े आदरपूर्वक परमसन्त परम दयाल जी के बनाये गये तथा हजूर मानव दयाल जी के द्वारा बनाये गये सभी आचार्यों तथा सन्तों को निमन्त्रण पत्र भेजे तथा सत्संगियों को भी आमन्त्रित किया। कमेटी के निमन्त्रण को बहुत से आचार्यों ने तथा दूर-२ के सत्संगियों ने बड़े आनन्द के साथ स्वीकार किया। उसका परिणाम यह हुआ कि आन्ध्र प्रदेश से, महाराष्ट्र से, मध्य प्रदेश से, राजस्थान से, पंजाब से, हरियाणा से, बम्बई से लोग राधास्वामी धाम पर पहुँचे। एक श्रद्धालु सत्संगी कैलिफ़ोर्निया अमेरिका से भी आये। आना तो अमेरिका की आचार्या श्रीमती थैल्मा कार्टर ने भी था, परन्तु वह किसी कारणवश आ नहीं सकीं। आपको यह जान कर हर्ष होगा कि अमेरिका, योरुप तथा ट्रिनीडाड में लोग यानि कि सत्संगी न ही केवल हजूर मानव दयाल जी तथा हजूर परम दयाल जी को जानते हैं, परन्तु हजूर दाता दयाल जी को भी जानते हैं। इसका कारण यह है कि हजूर मानव दयाल जी महाराज का विदेशों में भी कोई ऐसा सत्संग नहीं होता जिसमें परमसन्त परम दयाल जी के साथ-साथ उनके दादागुरु दाता दयाल जी का ज़िक्र नहीं आता हो। परम दयाल जी महाराज हजूर मानव दयाल जी महाराज को कहा करते थे, "मानव तेरी लम्बी आयु हो दाता सदा तुम्हारे साथ हैं।" जब वह भावुकता में आ जाते थे तो बड़े प्यार से कहते थे, "मानव ! तू मेरा दाता दयाल है।" ऐसे महान् सन्त परमपुरुष हजूर मानव दयाल जी का परम-धनी दाता दयाल के प्रति जो प्रेम है उसे देखकर मुझे पक्का विश्वास हो गया है कि दाता ने ही मानव दयाल जी को मानवता के मिशन को चलाने के लिए बुलाया है। परम

दयाल जी महाराज ने दाता की दया से ही उन्हें अमेरिका मैं जाकर ढूंढ़ा। अपने दादागुरु की परम्परा में परम दयाल जी के आशीर्वाद से वह दिन-रात कड़ी मेहनत करके इस मिशन को चला रहे हैं। दाता दयाल जी महाराज जो जो लिख गये हैं उसको मानव दयाल जी महाराज सरल व्याख्या देकर इतनी अच्छी तरह से समझा रहे हैं कि संसार में कोई दूसरा व्यक्ति उसे नहीं समझा सकता। हे मेरे सत्संगी भाई-बहनो परम दयाल जी महाराज जो युगपुरुष थे उन्होंने मानव दयाल जी को अपना उत्तराधिकारी चुनकर हम सब पर महान् उपकार किया है। दाता दयाल जी महाराज तथा परम दयाल जी महाराज की परम्परा में चल रहा यह मानवता धर्म दिन-प्रतिदिन आगे बढ़ रहा है और परम दयाल जी महाराज की भविष्यवाणी कि मानवता धर्म फैलेगा ! फैलेगा !! फैलेगा !!! मानव दयाल जी महाराज की मेहनत तथा निःस्वार्थ सेवा से सच्ची सिद्ध हो रही है। हम सब तो हजूर मानव दयाल जी को परमसन्त परम दयाल जी महाराज का साक्षात् रूप मानते हैं। एक बार दो-तीन साल पूर्व दशहरे के उत्सव पर सन्त तारा चन्द जी महाराज जब मानव दयाल जी का अमेरिका में सम्मान देखने के बाद लौटे थे तो उन्होंने सलवान स्कूल में सत्संगियों को यह कहा था, "मैं मानव दयाल जी का जो सम्मान अमेरिका में है, उसे देखकर दंग रह गया। आप इनमें श्रद्धा रखो। यह परम दयाल जी महाराज का साक्षात् रूप हैं। यदि यह परम दयाल जी का रूप न हों तो मैं अपनी दाढ़ी फड़वा लूं।" मैं यह सब प्रसंगवश इसलिये लिख गया कि मैं कुछ दिन पहिले एक टेप ढूंढ़ रहा था यह टेप हाथ लग गई और मैं सन्त तारा चन्द जी महाराज की टेप सुनने

लगा। मैं भी आपको यही कहता हूँ कि जो परम दयाल जी महाराज और मेरे आराध्य मानव दयाल जी महाराज को अलग-२ समझते हैं वे महान् गलती कर रहे है। इसी प्रकार जो परम दयाल जी महाराज तथा दाता दयाल जी महाराज को अलग-२ मानते हैं वे उससे भी बड़ी गलती करते हैं। वे सन्तमत और राधास्वामी मत के विषय में कुछ जानते ही नहीं। मैं तो मानव दयाल जी का आभार उतार ही नहीं सकता, मेरी कलम में तो वह ताकत ही नहीं कि उनकी पूरी-२ व्याख्या कर सकूं, हाँ मन यही कहता है कि उनका गुनगान दिन-रात करता रहूँ। हाँ तो अब आपको मैं महाराज जी के सत्संग की संक्षिप्त व्याख्या देना चाहूगा।

हजूर मानव दयाल जी महाराज 22 जुलाई 1989 से लगातार सत्संग दौरे पर ही हैं। 28 जुलाई से 6 अक्तूबर तक वह विदेशी दौरे पर थे। 3 अक्तूबर को महाराज जी भाग्य माता जी को उनके बहुत बड़े आपरेशन के बाद अपने लड़के प्रियदर्शी के पास ठीक होने के लिए छोड़कर भारत में वापिस आ गये, क्योंकि भारत में उनका दौरा पहिले से ही निश्चित था और दशहरे का उत्सव भी था। 25 नवम्बर तक वह भारत में दौरा करते रहे और 25 नवम्बर को फिर ट्रिनीडाड इत्यादि में दौरे पर चले गये। उसके बाद 24 जनवरी को देहली में पहुँच कर 25 जनवरी को होशियारपुर पहुँचे और 25 जनवरी से 28 जनवरी तक होशियारपुर रहे। 28 जनवरी रात को वापिस देहली गये वहाँ से 29 जनवरी को भाग्य माता जी, आचार्य के. पी. बर्मा, आचार्य कृष्ण मोहन तिवारी तथा प्रिय चन्द्र नेगी के साथ दक्षिण के बसन्त के दारे पर रवाना हो गये। 30 जनवरी को हनमकुण्डा वसन्त सन्त सम्मेलन के लिए पहुँच गये। इसकी विस्तृत सूचना महाराज श्री आपको अगले

मासिक सन्देश में देंगे मैं तो केवल आपको दक्षिण-दौरे तथा शिवरात्रि के दौरे की संक्षिप्त सूचना दे रहा हूँ।

हनमकुण्डा में इस बार परमसन्त परम दयाल जी द्वारा चलाया गया 36वाँ सन्त सम्मेलन था जो हर साल बसन्त पंचमी पर मनाया जाता है। परम दयाल जी 26 साल तक हर साल इस उत्सव पर आते रहे एक भी साल ऐसा नहीं गया, जब वह यहाँ न आये हों। उनका शरीर छोड़ने के बाद हजूर मानव दयाल जी इस पुण्यभूमि पर आते रहे एक साल भी ऐसा नहीं गया जब वह यहाँ न आये हों। वैसे तो हर साल हजूर मानव दयाल जी का बहुत आदर से स्वागत किया जाता है, परन्तु इस साल तो स्वागत बहुत ही निराला था। इस बार का स्वागत भव्य था विशेष था। पंडाल आज तक इतनी सुन्दरता से कभी नहीं सजाया गया था पूरे आँगन में रंग-बिरंगे बल्ब लगाये गये थे। हजूर परम दयाल जी महाराज की प्रबन्धक कमेटी ने एक बहुत ही सुन्दर तथा विशाल लोहे के तारों की मूर्ति बनवाई थी, जिसको रंग-बिरंगे बल्बों से सजाया गया था। दाता दयाल जी की मूर्ति के पास रखी परम दयाल जी की वह तारों द्वारा बनाई गई मूर्ति बहुत ही सुन्दर लग रही थी। न जाने प्रबन्धक कमेटी ने उसे बनवाने तथा सजाने में कितना धन तथा समय लगाया होगा। रात्रि के समय पण्डाल में वृक्ष तथा पौधे जगमगा रहे थे और लोगों का उत्साह तथा प्रसन्नता का ठिकाना नहीं था। उस पर चिन्तलबस्ती वालों के सुरीले गीत लोगों को मोहित कर रहे थे। धन्य हैं हनम-कुण्डा के निवासी सत्संगी तथा हनमकुण्डा का मानवता मन्दिर जहाँ युगपुरुष सद्गुरु वक्त सन्तों के परमसन्त दाता दयाल जी ने अपने जीवन का बहुत सा भाग बिताया हम

सबके लिए हनमकुण्डा किसी तीर्थस्थान से कम नहीं।

इस बार हनमकुण्डा में सत्संग में आने वालों की संख्या पहिले वर्षों से बहुत अधिक थी। लोग दूर-दूर से हजूर मानव दयाल जी महाराज के सत्संगों में आये सासंगियों की संख्या तो हर साल बढ़ती ही जा रही है। महाराज जी ने जब सत्संग दिये तो ऐसे लगता था कि लोगों को अपने तन की भी सुध नहीं रही और सत्संगी समाधि की अवस्था में चले गये। सत्संग इतने उच्च-कोटि के होते हुए भी इतनी सरल भाषा में थे कि सत्संगियों को परम दयाल जी महाराज के सत्संगों की याद आ गई। मैं आपको एक बार फिर याद दिलाना चाहता हूँ कि यह सन्त परम्परा, विशेषकर राधास्वामी परम्परा, जो मालिके कुल स्वामी शिवदयाल जी महाराज के समय में शुरू हुई थी, उसकी धारा निरन्तर उसी वेग से चल रही है जिस वेग से वह शुरू हुई थी। उसका कारण यह है कि इस परम्परा के हरएक सद्गुरु वक्त ने, अपने जीते-जी आने वाले सद्गुरु वक्त की नियुक्ति स्वयं कर दी और वह सद्गुरु वक्त अपने पूर्वज सद्गुरुओं और अवतारों की कलाओं को लेकर एक और नई कला के साथ आगे बढ़ता चला गया। शिवदयाल जी महाराज के बाद हजूर सालिगराम जी ने इस राधास्वामी मत को बहुत ही सुन्दर रूप से प्रस्तुत किया और हजारों लोगों को इससे फायदा पहुँचा। उन्होंने राधास्वामी मत को एक व्यवस्थित रूप दिया और यह स्पष्ट किया कि किस प्रकार शब्द-योग को अपना कर, हरएक व्यक्ति बिना किसी भेदभाव के इस जीवन को भी सफल बना सकता है और अपना परलोक भी। उन्होंने शब्द-योग पर पुस्तकें भी लिखीं।

स्वामी जी महाराज ने अपने सत्संगों में गुरु-शिष्य के

सम्बन्ध पर ज़ोर दिया और यह बताया कि एक आदर्श गुरु कैसा होना चाहिए और एक आदर्श शिष्य कैसा होना चाहिए। इस सिलसिले में जब एक बार स्वामी जी ने सालिगराम जी महाराज से यह कहा कि वह एक महीने तक उन्हें न मिलें, तो सालिगराम जी महाराज ने उनकी आज्ञा का पालन करना चाहा परन्तु गुरु के दर्शन के बिना चैन न मिला। एक दिन चुपचाप एक खिड़की को खोलकर उनके दर्शन कर ही लिये। स्वामी जी ने उन्हें देख लिया और अपना एक खड़ाऊँ उतार कर बड़े ज़ोर से खिड़की की ओर फेंका। खड़ाऊँ उनके माथे पर ज़ोर से लगा खून बहने लगा। तब दयालु स्वामी जी ने उन्हें अपने पास बुलाकर उनके सिर पर हाथ रखा। सालिगराम जी महाराज की खुशी का ठिकाना न रहा। वह बोले :—

'गुरु धरा शीश पर हाथ, मन क्यों सोच करे।
गुरु रक्षा तेरे साथ, क्यों न धीर धरे ॥'

यह था एक आदर्श गुरु-शिष्य का, जिसको स्वामी जी महाराज ने आने वाली पीढ़ियों के सामने रखा। राय सालिगराम जी महाराज ने अपने सत्संगियों को पुत्र माना तथा पुत्र के रिश्ते की पुष्टि की। सद्गुरु से कोई भी रिश्ता कायम कर लो, लक्ष्य वही है प्यार। सालिगराम जी महाराज ने सत्संगियों को सदा पुत्र ही समझा। दाता दयाल जी महाराज, जो इस परम्परा के सबसे अधिक प्रभावशाली सबसे अधिक कर्य में रत, सबसे अधिक शब्द में रहने वाले परमसन्त थे, जिनको सालिगराम जी महाराज ने कहा था कि वह राधास्वामी मत के व्यास सिद्ध होंगे, उन्होंने भाई-भाई के रिश्ते पर ज़ोर दिया। अपने प्रवचनों में तथा शब्दों में वह भाई का प्रयोग करते थे :—

'सुनो मेरे भाई कथा यह पुरानी।'

इसी परम्परा में आगे चल कर एक और नई दिशा, जो दाता दयाल जी महाराज ने दिखाई वह यह थी कि गुरु अपने उस शिष्य के कदमों में सिर नवा दे, जो भावी सद्गुरु वक्त होने वाला है। बहुत से स्थानों पर दाता दयाल जी महाराज ने परम दयाल जी महाराज को सम्बोधित करते हुए कहा है :—

'मैं नहीं राम कृष्ण का सेवक, ईश ब्रह्म नहीं जानूं।
मैं तो नाम फ़कीर दीवाना, सबसे बढ़कर मानूं॥
जो फ़कीर मोहे दर्शन देवे, अपना भाग सराहूँ।
अपने तन के चाम की जूती, पग फकीर पहनाऊँ॥

इस प्रकार दाता ने फ़कीर पर सैकड़ों शब्द लिखे। 1918 में जब दाता ने परम दयाल जी को सत्संग कराने का आदेश दिया और नामदान देने को कहा उस समय परम दयाल जी के पाँवों पर सिर रख कर कहा, "तू सद्गुरु वक्त है।" इसमें एक विशेष रहस्य था। बात यह है जब एक सद्गुरु वक्त आने वाले सद्गुरु वक्त को पहिचान लेता है, तो उसमें और आने वाले सद्गुरु वक्त में अन्तर नहीं रहता। परन्तु सबके आगे सिर नवाने का मतलब यह होता है कि उसके सभी गुण आने वाले सद्गुरु वक्त में प्रवेश कर जाते हैं चरणों के द्वारा। धन्य हैं दाता दयाल जिन्होंने इस परम्परा को चलाया जब उन्होंने फकीर चन्द जी महाराज को दीक्षा दी तो उनका उसी प्रकार आदर किया जैसा कि एक शिष्य गुरु का करता है :—

'शिष्य निवे गुरु को, यह जानत सब कोय।
गुरु निवे शिष्य को, बिरला जाने कोय॥'

इसी ही परम्परा में मालिकेकुल पूर्णधनी परमसन्त परम

दयाल जी महाराज ने मानव दयाल जी को परखा, पहिचाना और कई वर्षों तक उन्हें विशेष प्रकार के सद्गुरु वक्त के लिए तैयार किया। यह बात उन्होंने अपनी भाषा में कई पत्रों में लिखी है। एक पत्र में उन्होंने मानव दयाल जी महाराज को लिखा था कि मानव जी की जाते पाक द्वारा मानवता धर्म केवल भारत में ही नहीं बल्कि विश्व भर में फैलेगा। एक पत्र में यह भी लिखा था, "मानव! मैं बूढ़ा हो गया हूँ तेरी इन्तज़ार कर रहा हूँ। अब बहुत पैसा कमा लिया यहाँ चले आओ। मैं चाहता हूँ कि मैं अपने सिर को आपके कदमों में रख दूं।" ऐसे दर्दभरे शब्द केवल उसी भावी सद्गुरु वक्त के प्रति निकलते हैं, जिसको पहिला सद्गुरु वक्त पहिचान लेता है। दाता दयाल जी महाराज के कई अतिप्रिय शिष्य थे, जिन्हें वह बहुत प्यार करते थे, जिनका यह आदर भी करते थे पर उन्होंने ये शब्द तो केवल परम दयाल जी को ही लिखे :—

'जो फकीर मुझे दर्शन देवे अपना भाग सराहूँ।
अपने तन के चाम की जूती, पग फ़कीर पहनाऊँ॥'

परम दयाल जी तो युगपुरुष थे। उन्होंने चोला छोड़ने से कई वर्ष पूर्व घोषित कर दिया था कि मानव दयाल जी ही उनके एकमात्र उत्तराधिकारी होंगे। 1976 में लिखे गये पत्र में जो कि 1976 में 'मानव मन्दिर' में छप भी चुका है, उसमें उन्होंने फ़रमाया है "वह हज़ूर मानव दयाल जी को अपना उत्तराधिकारी घोषित कर रहे हैं।" इसमें एक राज़ है। यह मानव विवेकानन्द साबित होंगे। मैं यह सब बातें आपको इसलिये बता रहा हूँ कि मानव दयाल जी महाराज को परम दयाल जी के उत्तराधिकारी बनने का न तो लोभ था न चाह। उन्होंने महाराज जी को हाथ जोड़कर

प्रार्थना की थी कि वह उन्हें सेवकमात्र ही रहने दें सेवा करने के लिए, उन्हें उत्तराधिकारी न बनायें। परन्तु परम दयाल जी ने क्रोध से परन्तु दिली प्यार से कहा था, "देख मानव ! तुझे यह काम करना ही पड़ेगा यदि तू कहेगा कि तू नहीं करेगा तो मैं तुझे शाप दे दूँगा।" ऐसे अधिकार से ये शब्द कहे थे परमदयालु महाराज परम दयाल जी ने परन्तु साथ ही साथ भविष्य में आने वाली कठिनाइयों तथा लोगों के विरोध करने की बातें भी उन्होंने बता कर सावधान कर दिया था।

गुरु की आज्ञा का पालन करने के लिए मानव दयाल जी महाराज अमेरिका की शानदार पक्की नौकरी तथा सारे ऐशो-आराम को तिशांजलि देकर भाग्य माता जी को साथ लेकर भारत में चले आये। यह तो मालिक की दया थी कि नौकरी में दो साल की कमी होने के बावजूद भी दयालु अमेरिकन अधिकारियों ने उन्हें विशेष कृपा करके हज़ारों रुपये महीने की पैन्शन दे दी। यह परम दयाल जी की कृपा तथा इच्छा थी कि उनका उत्तराधिकारी मानवता मन्दिर का पैसा न खाय। भाग्य माता जी दिन-रात मन्दिर की सेवा तो करती हैं, परन्तु मन्दिर के एक पैसे को छूती तक नहीं, अपनी पैन्शन में से आधा पैसा सभी मानवता मन्दिर के केन्द्रों में बाँटती हैं। भारत में तथा विदेशों में जहाँ-जहाँ भी वह मानव दयाल जी महाराज के साथ जाती हैं अपने ही पैसे की टिकट खरीदती हैं। जहाँ मानव दयाल जी रहते हैं वहाँ का किराया देते हैं और अपने ही खर्चे पर नौकर रखा हुआ है। मानव दयाल जी निरन्तर चलते चले जा रहे हैं चाहे कोई उनका साथ दे या न दे। उनके अमृत-वचनों को सुनने के लिए लोगों में तपन करारी है।

उन्होंने सत्संगियों में एक नई उमंग पैदा कर दी है। हनमकुण्डा के बाद महाराज श्री ने करीम नगर के अति श्रद्धालु सत्संगियों को सत्संग दिया, वहाँ से वैमलवाड़ा दक्षिण काशी भी सत्संग दिया और सदैव की भाँति चिन्तलबस्ती में भी। हैदराबाद तथा सिकन्द्राबाद में भगवान् व्यास तथा रूपचन्द दो नवयुवकों के प्रबन्ध में दो सार्वजनिक सत्संग हुए जिससे लोगों—हज़ारों लोगों ने फ़ायदा उठाया। कई नये-२ लोगों ने मानवता धर्म तथा मानवपरिवार में प्रवेश किया।

निज़ामाबाद में एक आलीशान सार्वजनिक सत्संग हुआ और निज़ामाबाद से तीस मील की दूरी पर स्थित एक छोटे से शहर आरमोर में सत्संग आयोजित हुआ। उस छोटे से शहर में कम से कम तीन हज़ार लोग मानव दयाल जी महाराज के सत्संगों की ख्याति के बारे में सुनकर एकत्रित हो गये। हालाँकि आरमोर शहर के लोग राधास्वामी मत से सम्बन्धित नहीं थे, फिर भी उन्होंने महाराज श्री के सत्संग को बड़ी श्रद्धा से सुना और यह स्वीकार किया कि मानवता धर्म ही संसार का श्रेष्ठ धर्म है और इसी के द्वारा ही विश्व-शान्ति हो सकती है। मानवता धर्म या राधास्वामी मत का सनातन धर्म से विरोध नहीं है बल्कि वह उसका एक अभिन्न अंग है। आन्ध्र प्रदेश के सत्संगियों की श्रद्धा और प्रेम का पारावार नहीं।

आन्ध्र प्रदेश के दौरे के पश्चात् महाराष्ट्र का दौरा शुरू हुआ। पहिले भी महाराज श्री ने आपको कई बार बताया है कि अहेरी, महाराष्ट्र के सत्संगियों की श्रद्धा का पारावार ही नहीं। हमेशा की तरह वहाँ के निवासी महाराज श्री को गाजे-बाजे, तथा शहनाई बजाते हुए, नंगे पाँव एक मील तक चलते हुए जीप के द्वारा सत्संग के पण्डाल में ले

गये। वहाँ दो दिन तक लगातार सत्संग के बाद हजूर ने नागपुर में वायुसेना नगर में एक बहुत ही प्रभावशाली सत्संग दिया। लोग बहुत ही प्रभावित हुए और उन्होंने यह इच्छा प्रकट की कि वहाँ भी एक मानवता मन्दिर की स्थापना की जाय। उसके बाद मध्य प्रदेश का दौरा हुआ, जिसकी सूचना आपको अगले मासिक सन्देश में दी जायेगी। यहाँ तो केवल यही बता रहा हूँ कि इटावा, मध्य प्रदेश के एक छोटे से कस्बे में उज्जैन, तराना तथा इन्दौर से हजारों सत्संगी एकत्रित हो गये जहाँ शानदार सत्संग हुआ।

महाराज श्री इटारसी के सत्संग देकर 27 फरवरी 1990 को इलाहाबाद में दाता दयाल जी महाराज के सुयोग्य तथा अति श्रद्धालु दोहिते श्री सुमित्रा कुमार के घर पहुँचे जहाँ सुमित्रा कुमार के बड़े भाई तथा दाता दयाल जी महाराज के बड़े दोहिते श्रद्धालु राजा राम जो कि राधास्वामी धाम के ट्रस्ट के पैटर्न हैं भी उपस्थित थे। दोनों सुयोग्य भाइयों ने महाराज श्री का बहुत ही आदर से स्वागत किया और यहाँ पर आये हुए लोगों का भण्डारा किया, वहाँ दो सत्संग हुए।

दूसरे दिन महाराज श्री सुमित्रा कुमार के घर आये हुए सत्संगियों को लेकर दो कारों द्वारा राधास्वामी धाम पहुँचे। वहाँ जाकर मालूम हुआ कि दूर-२ के प्रान्तों से लोग हमसे भी एक दिन पूर्व पहुँच गये थे। भण्डारा चलता रहा ऐसा लगता था मानो वहाँ एक शहर ही बस गया था। राधास्वामी धाम के प्रबन्धकों ने यह बताया कि ऐसी रौनक तथा ऐसा भण्डारा 1939 के बाद यानि कि दाता दयाल जी महाराज के चोला छोड़ने के बाद 51 वर्ष के बाद 1990 में ही महाराज मानव दयाल जी की कृपा से हुआ। यहाँ पर

दाता दयाल जी महाराज के विशेष रेडिएशन (अभी तक भी वो उपस्थित हैं) के कारण यहाँ के सत्संग तो बहुत ही प्रभाव-शाली रहे। महाराज श्री का तो कहना ही क्या है उनके शिष्यों-परमशिष्यों ने भी कमाल कर दिया। आचार्य केशव वर्मा सैशन जज देहली ने महाराज श्री को सन्तों का सन्त तथा परम इष्ट माना। कैप्टन लाल चन्द जो जो राजस्थान से बहुत दूर से एक दिन पहिले ही पहुँच गये थे उन्होंने अपने वचनों से सत्संगियों को बहुत प्रभावित किया। आचार्य कृष्ण मोहन तिवारी महाराज श्री से एक मिनट भी अलग नहीं हुए लखनऊ से अपनी कार लेकर निरन्तर महाराज श्री की सेवा करते रहे। आचार्य कृष्ण मोहन श्रीवास्तव चुपचाप सेवा करने वालों में से हैं उनकी श्रद्धा का भी पारावार नहीं। और हमारे मध्य प्रदेश के आचार्य श्री सूर्य नारायण भट्ट भी किसी से कम नहीं। उनकी श्रद्धा भी कमाल की है। मुझे यह बताने में हर्ष होता है विशेष हर्ष कि महाराज श्री द्वारा बनाये गये सभी आचार्य अद्वितीय हैं।

दो दिन तक लगातार अमृतवर्षा होती रही सत्संगों की। परमपुरुष दाता दयाल जी की पुण्य नगरी (गोपीगञ्ज में) राधास्वामी धाम, जो कि हमारे लिए एक तीर्थस्थान है मानव दयाल जी महाराज के पाँव रखने से और भी पवित्र हो गई।

24 फरवरी को आरती से पहिले ट्रस्टियों की मीटिंग हुई जिसमें कुछ नये सदस्य भी बनाये गये। इस ट्रस्ट के आध्यात्मिक संरक्षक परमसन्त सद्गुरु वक्त, मालिकेकुल मौला मुकद्दस युगपुरुष, मानव दयाल जी महाराज हैं। महाराज श्री ने राधास्वामी धाम की सारी ज़िम्मेवारी अपने

ऊपर ले ली है। उसके चहुँमुखी विकास के लिए लोगों ने वहाँ तीस-पैंतीस हज़ार रुपये देने की बात पक्की कर दी। आपको यह जानकर अति हर्ष होगा कि इस आर्थिक सहयोग में सबसे आगे परम श्रद्धालु सत्संगी श्री रसूल आज़ाद (जिनको महाराज श्री प्यार से रसूल आनन्द कहते हैं) उन्होंने दस हज़ार रुपये का अनुदान दिया। अभी कुछ ही दिन पहिले उन्होंने मानवता मन्दिर जयपुर को भी दस हज़ार की धन राशि दी थी। वह जन्म से एक संस्कारी मुसलमान हैं, परन्तु मानवता धर्म, परम दयाल जी महाराज तथा मानव दयाल जी महाराज के प्रति उनकी श्रद्धा कमाल की है। यह है मानवता धर्म की विशेषता, इसलिये इसे सब धर्मों से ऊँचा माना गया है।

राधास्वामी धाम के बारे में परमपुरुष दाता दयाल जी महाराज ने जो भविष्यवाणी की थी कि राधास्वामी का उद्धार उनका पोता ही करेगा आज मानव दयाल जी महाराज के माध्यम से सत्य सिद्ध हो गई। तभी तो उन्होंने राधास्वामी धाम की सारी ज़िम्मेदारी अपने ऊपर ले ली है। उन्होंने यह भविष्यवाणी की है कि उनके दादागुरु का यह स्थान विश्व को शान्ति देने वाला अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्र बनेगा। राधास्वामी धाम के अधिकारियों सुमित्रा कुमार, राजा राम, राम किशोर जी तथा रमन जी जो खास प्रबन्धक थे ने बहुत ही अच्छा प्रबन्ध किया। इलाहाबाद के रेलवे के रिटायर्ड अधिकारी श्री कुन्द्रा तथा उनके दोनों सुयोग्य पुत्रों ने अपनी-२ दो-दो कारें देकर राधास्वामी धाम की खूब सेवा की।

एक बात यहाँ और कहना चाहूंगा। परम दयाल जी

महाराज ने एक सत्संग में यह घोषित किया था, "जैसे स्वामी जी महाराज ने गुरु-शिष्य के रिश्ते को पनपाया, सालिग राम जी महाराज ने भाई-२ के रिश्ते को पनपाया और मैंने आपको दोस्त के रिश्ते में बाँधा। मैं आपको इसलिये दोस्त कहता हूँ। दोस्त वह होता है जो प्यार भी करता है और क्रोध भी करता है और डाँट भी देता है। इसलिये मैं कभी-कभी आपको डाँट भी देता हूँ। अब एक बात आपको और बताना चाहता हूँ मेरे दोस्तो! सुन लो। मेरे बाद जो भावी सद्गुरु आयेगा वह ऐश्वर्य से राज्य करेगा।" परम दयाल जी की यह भविष्वाणी बहुत ही शीघ्र सत्य साबित हुई मानव दयाल जी महाराज विदेशों से भी बहुत पैसा ला रहे हैं और भारत के श्रद्धालु सत्संगी भी धन से खूब सहायता कर रहे हैं। आठ साल के अन्दर चार नये मानवता मन्दिर बन रहे हैं तथा राधास्वामी धाम की ज़िम्मेवारी भी महाराज श्री ने ले ली है। ऐश्वर्य के साथ-२ प्रेम के अवतार मानव दयाल जी महाराज लोगों के दिलों पर प्रेम से राज्य कर रहे हैं। यदि यह बात सत्य है कि परम दयाल जी महाराज सत्य के अवतार थे तो यह बात भी सत्य है कि मानव दयाल जी महाराज प्रेम के साक्षात् अवतार हैं। हम सबको इस बात का गर्व होना चाहिए कि हमें सन्मार्ग पर चलाने वाले सद्गुरु वक्त परमसन्त महामानव मानव दयाल जी महाराज, जिनको सद्गुरु वक्त परम दयाल जी अमेरिका से ढूँढ़ कर लाये और अपने स्थान पर बिठाया इस युग के परमपुरुष हैं। एक बार फिर मेरे भाइयो तथा बहनो आपसे निवेदन करता हूँ कि अहंकार को छोड़कर

परम दयाल जी की परम्परा में उनके एकमात्र उत्तराधिकारी मानव दयाल जी की शरण में आ जाइये यदि आपसे जाने या अनजाने में कोई ग़लती हो भी गई हैं, तो शरण में आ जाइये वह दया के सागर, अकाल पुरुष आपको क्षमा कर देंगे। मेरे दोस्तो! एक समय में गुरु तो हजारों हो सकते हैं, परन्तु एक समय में सद्गुरु वक्त एक ही होता हैं। तो सद्गुरु वक्त परमपुरुष परमसन्त मानव दयाल जी की शरण में आइये आपका लोक भी बन जायेगा और परलोक भी।

सबको राधास्वामी!

मानवमय
आपका अपना ही
शब्दानन्द

महापर्व वैसाखी

शुभ सूचना

सत्संगी जन को सूचित करते हुए हर्ष हो रहा है कि हर साल की भाँति, इस वर्ष भी वैसाखी महापर्व मानवता मन्दिर, होशियारपुर में दिनांक 12 व 13 अप्रैल 1990 को समारोहपूर्वक मनाया जायेगा। परमसन्त सद्गुरु हिज़ होलीनेस हज़ूर मानव दयाल डा० ईश्वर चन्द्र शर्मा जी महाराज का सत्संग-कार्यक्रम इस प्रकार होगा :—

12-4-90 सत्संग प्रातः 9 से 12 बजे तक।
इग्ज़ीक्युटिव, बोर्ड आफ् ट्रस्टीज् की मीटिंग 2 बजे दोपहर सत्संग के बाद।

13-4-90 सत्संग प्रातः 9 से 12 बजे तक।
सायं 3 से 6 बजे तक।
जनरल मीटिंग ट्रस्टीज़—4 बजे सायंकाल।

सत्संगी जन सभी सत्संगों में सादर आमन्त्रित हैं।

जनरल सेक्रेटरी

Manav Mandir

ENGLISH SECTION

A Paper devoted to the Social, Cultural and Spiritual Welfare and Uplift of Mankind all over the World.

BE MAN

March 10th, 1990.
MANAVTA MANDIR
Hoshiarpur, (Pb.) India.

THE DIVINE IDEAL WITHIN

by

Data Dayal Maharshi
Shiv Brat Lal Ji Maharaj Varman

IX

In the beginning of manifestation there was, there is, and will be the Static and Kinetic conditions of Divinity. Static is above and Kinetic is below. Static condition stands aloof, apart and exclusive, While' below this Static state, the Kineticism is vibrating in nebulous condition with polarization and non-polarization of energies in playful state, of atoms, ions, electrons etc., appearing and disappearing in positive and negative froms. These combine and creat tee Causal Universe. Then, as natural consequencd, spring up the Subtle, followed, in its turn, by the Gross Un verse, as represented elsewhere.

The path of the efficient Soul lies within and midway in the inside of the 'Sushmna' artery that goes straight from down below to the upper and the uppermost regions. It is like a rope situated between 'Ida' and 'Pingala' arteries. 'Ida' is a tubular

vessel, one of the channels of the Vital Spirit, on the left side of the body. And 'Pingala' is a similar tube on the right side of the body. This 'Sushmna' passes up from the rectum in the gross body right through the subtle and the causal bodies upwards into the Static Sphere hinted at and alluded to The Path lies within it.

Every etion the Gross, the Subtle, and the Causal has six important 'Chakras' never planes, or circular rings assigned to it. They locate certain powers, faculties and elements etc. in them. The description of these, often, is detailed in the books on Yog-systems. The following table of the 'chakras' of the gross body will give some rough idea of these to the reader. He should bear in mind that in the zone of the Gross portion they are gross; in the Subtle, they are subtle; in the Causal, they are causes.

To enable the reader to continue a proper study of our subject, we refer him to the chart of the six centers or 'Shat-Chakra' of the 'Pind' or the gross body, facing page 43 and also FIGURE II, facing page 44.

Two chakras' often have been paired with one another, e.g.,

(1) 'Muladhara' and 'Swadhishtana,' or Guda-chakra' and 'Indriya-chakra,' or the regions

As is 'Pind', the region of the gross bodies, so is 'Brahmand', the region embodying the mental Universe which is technically called 'Brahmand' (the Egg of Brahm). The one is Microcosm, the other is the Macrocosm. Macrocosm has been likened unto Microcosm. They are similar and alike in their various aspects.

Instead of six, only three regions have been depicted here, in Figure III. They have been paired as it is ; and, on account of their being moulded or linked together, only their the respected forms have been represented in the form of circles. For the explanation of this, the reader is required to read note at the end of the IX article wherein is shown how they have been paired in the gross body. Here, they are represented only as three circles.

The embodied individual soul is either wakeful or dreamy or in a dreamless condition. So, this Universal Mental-Self 'Brahm' also, is either wakeful, or dreamy, or dreamless. The wakeful condition in both of them, is the state of conscious manifestation in full ; whereas, their dreamy condition is their mental consciousness ; while, their third or dreamless state is the condition of absorption within themselves. Thus the three states or conditions are similar in both of them.

The living embodied individual entity in wakeful

condition, is called 'Vishwa' (worldly) for he manifests himself in a thousand forms from his top to toe, displaying his energy through the apertures of the organs of sense, the organs of action ; the nervous system ; the arteries, the millions of pores, etc. etc. In comparison to this the wakeful 'Brahm' has been called 'Virat', (making big person who is thousand-eyed, thousand-headed, thousand-handed, etc. etc. His region is called 'Sahas-dal-Kamal, the thousand-petalled Lotus.

The living embodied individual-entity, while dreaming, is called 'Tejas', effulgent in his own native light, tri-lateralled from the point of view of meditating, discriminating and identifying the various actions. His similar or prototype, the 'Brahm' in this condition, is called 'Antaryami' i.e., working inside or retiring into inner self and working within in a tri-lateral form, represented in the Figure III, by the triangle inside the circle. This region of the dreaming 'Brahm' is called 'Tri-Kuti' (three-aspected) i.e., engrossed in three processes of three eminences as is the case with his reflectory image of the individual living entity below.

The individual dreamless living entity in the gross plane, gets the name of 'Parigya' (whole-wisdom) wanting in nothing self-contented —self-contained—in one's own self. His prototype, the dreamless 'Brahm' ge ts the name 'Hiranya-garbha' (golden Egg), or

'Sutratma,' inter-threaded, inter-woven, internally absorbed in His own Self, not engaged in creation, manifestation, or displaying. His energy either externally or internally. Bear in mind : as is the man, so is the God.

Now we come to the plane of 'Para-Brahmand', the Universe beyond the mental realm which is nothing but the Causal Universe as already has been said elsewhere. It is seedy, and its region finds room in man's brain. For the lucidity of it, we specify the position of its centres in the Figure IV, facing page (48).

Cause is cause and it is Cause that gets affected in its turn, just as seed being cause, gets germinated fructified, etc.

It should be noted here that the 'Satlok', where the Fourth Dimension begins, is the region which is in immediate affinity to and above this Cause. The subject here gets a little compilcated. However, the 'Sat-lok' is the centre of the All-life, the Reality as it were. And its reflection below, becomes the Causal Universe.

It is situated in the head where the lobes have been sewed or joined. It is the centre of Name and form. In a new-born child you may mark there, a sort of agitation which rises and falls, making a sound resembling 'Sat—Sat,' 'Sat—Sat,' 'Sat—Sat'.

These centres beginning from 'Muladhara' upto

'Sat-lok' are twelve in number. Technically they are termed 'Dwadash-Chakram'.

The 'Hath Yogies' begin their practice from 'Muladhara' and finish it at the 'Sahasdal-Kamal' which they call 'Sahasrara' or the Crown-chakra of the head. Right from 'Sahas-dal-Kamal' up to the topmost part of the head, where the Hindus have their tuft of hairs and regard it as the centre of combination of the nervous systems, they omit the intervening centres, of which very few possess any knowledge.

The Radhaswami Faith, however, begins its devotional method from 'Ajna-chakra' the centre of 'Anand-mai-Kosh' or the Bliss Sheath and continues to the 'Sat-lok' and beyond.

In majority of cases 'Sat-lok' becomes the terminous point. On reaching it, the spiritual elevation is easy to 'Alakh,' 'Agam' and 'Radhaswami Dham' which is the topmost part of the crown of the head. Upto the 'Sat-lok' the consciousness of name, form, and colour is possible. Beyond it they find no room. There is neither Unity nor Trinity. It is unspeakable. It is intuitional merely.

This Yog is neither mystic nor impracticable. It is rather easy. All that is necessary is an efficient and eligible pupil who is qualified to keep his mind and senses under control, which is also taught

by the Teacher himself.

The very name of Yoga is so much surrounded with ambiguity that a novice feels himself bewildered. He knows not what it is. Neither is it defined in clear terms. Moreover, it has always been said : "Yoga is the path to be treaded by the head and not by the foot", "one who follows the up direction of the nose, without flinching to the right or to the left, is worthy to be accepted as a disciple "man is an inverted being, turned upside down;" so on, and so, forth. Hence a Yogi has to tread the path of inversion within himself quite contrary to other systems of concentration in vogue, in the world.

These sayings are nevertheless true to the letter and if properly explained, they will remove all doubts and illusions. Man is an inverted being ; man is required to go straight in the up direction of his nose ; man's duty it is, to walk through his head. These are indisputably the first principles, Facile Principles, of the Yog, and these find their true explanation in the words that follow :

(1) The 'Sushmna' nerve passes right up to the aperture of the nose and goes to the crown of the head. It is this Path that the pilgrim has to pass through, to the Holy of the Holies. Those who part their hairs through the middle of the head straight along the nose, point out this Path through the

direction of the parting. This is what means following "the direction pointed out by the nose," and the wayfarer is warned neither to turn to the right nor to the left of the Path. How easy this explanation ! Formerly it was confusing and breeding dread to those who practised, but by this explanation, all suspension and terror is removed.

(2) In the economy of Creation, man has been spoken of, by the ancient Seers, as "an inverted tree" whose roots are turned upward towards the Sky and the branches are turned towards the Earth. In structure, man and tree are the same. Skin, blood, tallow, fat, moisture, veins, arteries, nerves etc., are alike in both. They eat and drink through their mouths which are nowhere else but in their heads or roots. They think and act similarly. Man has his organs of sense in his head and so have the trees their sensibility implanted in their roots. But, alike though they are in every respect, reversion or inversion between them is the difference that one cannot do away with. The head of the tree is rooted down in the soil while that of the man flutters in the sky—call them roots or heads, they mean the same thing. Verily, his legs and hands are branches hanging down while in the trees they are uplifted. Trees produce and shed their flowers and fruits upwards : but man's condition is quite the reverse of

this. He casts his flowers and seeds downwards etc., etc.

(3) The tree thinks through its root and the man thinks through his head. The life of the man lies more in the head and of the tree in the root than in the limbs or branches. The tree has its material of existence below in the root while man stores it thoughtfully or impressionally in his head. It thinks through the root and he thinks through the head. Whenever a man wants to know a thing, he gets his mind lifted into the upper regions of his head. Practically he walks there, so to say, to find out whether his aggregated impressions areamassed there or not. This faculty is called memory. This is walking through the head. In a similar way all the regions of Spirituality find room in the apertures of the brain up to the crown of the head and man has to tread these, planting his foot of the head on and trampling these spheres of comparative materiality under his feet, flying upward and upwards in the manner of a bird, till the highest goal is attained. This has been likened unto the walking with the head. Is this not true ? Yes, but it requires practice. It requires practical knowledge, and it requires association with one's Master, Experto Crede (trusting one who has had experience). This much for the misleading ideas that find utterances in the mouth of the ignorant people.

Now about the practice.

If one has restrained his mind a little, he can continue the practice to his advantage with the help of 'Sumiran', 'Dhyan' and 'Bhajan'.

'Sumiran' is the mental-repetition of the Holy Name which leads you to the Path within. 'Dhyan' is the mental-meditation of the Holy Ideal which lights your Path within. And 'Bhajan' is the mental-audition of the Holy Sound which eventually directs you to the Holy Abode within. What is difficult here?

Never utter the Holy Name in vain. Have recourse to it at the time of practice. Do everything to the purpose. Purposeless work will make you a slave of habits and then your mode of working, here, there and else where will not be of a master but of slavish tendencies of ritual and ceremonial observances just like an automaton.

Light on the Path! that is the result of meditation, or rather, Light, whatever hidden in the centres, will burst forth within you to the centre of Light. How pleasant and how ecstatic and how blissful!

Then, there is the Sound-Principle. The Heavenly Music will accompany your steps enticing you, immerging you into frenzy and transporting you to the raptures of the Minstrel whose Melody is neither vowels nor consonants nor uttered by the mouth of the mortals. It is something which exceeds and baffles every sort of description. It is unuttered and unimitated. How wonderful! In the presence of these, how can one say that the practice of 'Anand-Yog' is hard and unpleasant? It is not difficult to understand and much less difficult to practice.

VOICE OF HUMANITY

by

Param Sant Param Dayal

Pt. Faqir Chand Ji Maharaj

Some of my friends are pressing me to attend the Conference of World Religions on 17th and 18th November 1957 at Delhi and to share my experiences with them. I do not know why they are pressing me so much. But this had been my cherished desire that the venerable high souls of all religions should assemble somewhere at a Conference and convey to one another their personal spiritual experiences in an impartial manner and also explain how did they achieve that highest stage.

My whole life has been devoted to love, devotion Yoga and truth etc. I have come to the conclusion that every religious sect has tried to secure a following by means of either some attractive or some frightening propaganda. This tact in the name of religion has created hatred, enemity, superiority and inferiority complexes, jealously and malace in the world. It is so because the preachers themselves lack proper understanding on the real and inner

meaning of religion. If people had rightly understood their religious principles, they would have attained peace and happiness. How nice it would be if all the religious preachers could demonstrate their own inner personal experiences in the conference instead of quoting the texts of scriptures and reaching some formal conclusion for the guidance of people as it happens in most of the conferences. I may not perhaps be able to attend the conference personally. Even if I may have the chance to attend it, who knows whether I may be allowed to present my experiences of life most frankly and honestly before such a conference, where status, class and the number of followers a religious leader has, is the criteria. So I am publishing this small article for you.

Man always thinks of his creator and tries to enquire about the first cause. The perceptions that are formed in his brain, are in reality the impressions derived from his sense impressions, or, are the results of experiences gained from his parents and associates. His inner experience impelled him to express himself. Everybody expressed his experiences. So the result was that various religions and sects came into existence, based on peoples miraculous experiences and intuition. Thoughts, feelings and beliefs are very subtle, but when concentrated upon, they become very strong in human mind. So the religious leaders

take the aid of attracting innocent people, either by some attractive means or by frightening, them to spreading their ideologies. I have spent my whole life in search of that Power who is the creative urge behind this visible world and the sustainer of it. I have been loving Him from the core of my heart.

My personal inner experiences have revealed to me that whatever ideas or impressions I have gathered from religious books and especially from the pious life of my respected Guru Data Dayal Ji Maharaj spread within my consciousness and appeared before me in the shape of inner experiences. I heard various divine sounds and saw numerous divine lights, but I did not stop there. My search continued. At times, I reach such a state of consciousness, where those divine lights and sounds are also transcended and my being is transformed into that limitless Entity, which is indescribable.

On the basis of this intuitive experience, I consider that Lord to be the Supreme Reality from whom all life has emanated and into whom all will merge. That one Reality is the basis of all that is. On the basis of my experience, I venture to remark that all those religious sects, whose beliefs with regard to the Supreme Reality are contrary to those expressed by me as above, are all only worshippers of imaginary idols. Whatever fruits they get is the result of their

own ignorance they wrangle with.

In fact, man always feels the need to lean on something for the fulfilment of his physical, mental and spiritual needs. Every religious sect has prescribed something for the fulfilment of bodily needs like food, shelter, clothing etc. Various social laws, according to the needs of times for doing work with mutual cooperation were set up. The aim was always the same, although the modes of work differed from time to time. The common man was bound by these religious laws for even doing the work of social uplift. Poor ignorant common people never tried to understand the underlying principles and so they fought with other people engaged in doing the similar sorts of works in other ways. This led to a miserable social life,

To keep oneself mentally contented, one needs some sort of mental satisfaction. Every religious sect accepts mental satisfaction in one shape or the other, according to the needs of the time and circumstances. Some resort to the worship of some deity, some to a preceptor and some others to an incarnation, as an aid for mental support. Everyone proclaims that his Deity, or preceptor is Supreme. But in reality, the real gives of his faith is his own devotion and faith, and not the ideal or Deity. I have been trying for years, from my own inner experience, to

explain this secret to you, which has been kept a secret for centuries. I have openly proclaimed it in order to remove ignorance from the minds of people and to harmonize the differences of religious sects. This will protect the ignorant humanity from being exploited by self-seekers in the name of religion.

Man's mind is very fickle and causes defusion, illusion, confusion and peacelessness. In order to get rid of the mental weekness, various methods of concentration, such as recitation of the Mantra, Meditation etc., have been devised. In reality one can attain peace, when one is able to concentrate his mind on one point. Due to ignorance, people fight with one another on the wordings of different Mantras. But the real peace lies in mental stillness, which comes by concentration through any Name or Mantra. I had the opportunity to come across some atheists who wanted peace of mind, but did not want to repeate any Mantra. I told them to concentrate their mind on 1, 2, 3, 1, 2, 3. They repeated 1, 2, 3, 1, 2, 3 for hours and were able to concentrate So you see that the Name or the Mantra matters little but it is the faith or belief that counts.

In fact, spiritual experience is the experience of Sound and Light, because Sound and Light are the primal cause of creation. The Spirit of Light and

Sound. I have personally experienced my identity with these two. In reality, the thoughts, emotions, feelings and even the body are all gross forms of Light and Sound. I regard the soul as bliss itself. But even this state of consciousness is a conditioned life and not an absolute realization of Selfhood. Life is ever changing, so the realized souls have not accepted even life as the supreme goal. Some people who recite Mantras continuously and attain some miraculous powers due to concentration of mind, start exploiting the ignorant masses for their selfish ends, are doomed.

I look upon this world as a mental projection, or the result of one's own mental cravings. So all these religious sects were founded by the eminent minds of human race to suit the requirement of their times. With the passage of time the human cravings also undergo a change. This gives rise to new religious sects or faiths.

According to the law of Supply and Demand, if humanity changes according to the changing needs of the time, it is well and good, otherwise the inner cravings of the human mind will bring about a change and the entire mode of describing things in the most interesting or frightening manner, as being practised by various religious sects, will cease. It will have no effect on the people ultimately.

Man is constituted of body, mind and soul or

the absolute Spirit, which is the sustainer of body and mind. The aim of religion is to get ourselves emerged entirely into the Basic Reality and lead a peaceful and blissful life. I call it the Religion of Humanity.

It is everybody's duty to supply food to the hungry, water to the thirsty, clothing to the naked and medicines to the ailing as much as he can.

In this world of mental creation, mental waves have a great force. So, wishing of everybody's welfare, non-violence as a religious creed, optimism and faith in bright destiny of the human race and all indispensable.

In this changing world of pairs of opposites, a man even having all comforts, becomes dissatisfied. Therefore a way is needed, which may lead the soul to freedom from the bondage of these opposites. I have experienced a state where there are no conflicting pairs. That state is Divine Light and Sound. Ordinarily, nature brings every person to slumber daily, but in that state there is no consciousness. But the practices I have undergone, lead to an experience of self-consciousness in the shape of super bliss. This bliss is not a figment of the imagination. It is self-existent.

The True Goal of human endeavour is to realize the real nature of one's Self which will bring everlasting freedom from this changing world.

The welfare of the world is based on the understanding of these very fundamentals. The ignorant masses are bound by the ties of various religious sects or faiths. If the true and selfless saints and sages stop frightening people in their sermons or telling them that they will come to rescue their disciples at the time of their death, and tell them the whole truth making them optimistic instead of pessimistic and cooperative, the world can be highly benefitted.

Mere sermons can at best provide to the audiences enthusiasm or can remove their doubts and misunderstandings, but cannot enlighten them. I have experienced that the ray: emanate from the bodies of liberated souls and eminent sages which do iufluence their hearers.

According to the instructions of my holy Preceptor Maharshi Shiv Brat Lal Ji Maharaj and the great Sant Baba Sawan Singh Ji Maharaj of Beas, I do earnestly wish peace to humanity and I have full faith that my desire will be fulfilled and all human beings and religious sects, who hate one another on account of fanaticism, will love one

another some day. The present day tendencies are disastrous and must be resisted by educating the public mind and making them conscious of their self.

In my humble opinion, based on my personal experience of 73 years in search of peace, I dare say that unless one has a sound brain and mind in a sound body, one cannot be peaceful. Similarly a country or nation cannot be peaceful unless its body, mind and brain are made sound.

May the Supreme Power bestow peace and prosperity on the whole universe.

SWAMI RAM TIRTHA

by

SARDAR PURAN SINGH

From the hearts of the people of India, once did rise prayers breathing peace for the whole universe. It was when people were tired of war and conquest. It was when the warrior race came home and saw that they had sold their soul for a mess of pottage earthly empire. The spirit of renunciation had vanquished the spirit of conquest in them. Peace and love spread all over India and made it the holy land for the neighbouring races.

In India the ideal is not to measure success by the amount of gold one accumulates, not even by the amount of knowledge one toils to store, nor by rank, or position, but only by one's amount of self-knowledge and self-culture. Man is to be judged not by his outer circumstances, but by his inner experiences. Swami Ram Tirtha's biography is that of the inner man. It is the silent evolution of his soul, emerging from the world of matter by slow processes of self-realization and entering into the domain of spirit.

Swami Ram's life is a rural hymn in the tunes

of the prairie and the jungle, singing of universal peace and love. It is the same note that had its birth in the glorious Upanishads. Nothing new about it. Swami Ram only raised it once again and poured it forth in savage cries calling man from discord to harmony, from difference to agreement-in-difference, from self to self-in-all, from diversity to unity—in diversity. He called man away from hatred to love and from war to peace. From him did flow good-will to all. He was the poet of the inner man and inner nature. To him all men and all things were divine.

Swami Ram was born in 1873 at Murliwala, a small village in Gujranwala, Punjab in a poor Brahmin family. It is said that Goswami Brahmans of Murliwala village are the descendants of Goswami Tulsidasa, the famous author of the Hindi Ramayana. His father Goswami Hirananda was the family Guru of the Hindus of North-Western Frontier province. He was very poor. Swami Ram's mother died a few days after his birth. He was brought up on cow's milk. He became very fond of cow's milk and could drink five quarts of milk at a time. He joined school at the age of five. His father was very poor. So when Swami Ram reached higher classes, his father could not support him financially. His fellow-students relate that at times, Swami Ram would forgo

his meals for the oil of his midnight lamp in his college days. Many a time young Ram had to strave for days together.

He had a soft handsome face of a typical Aryan cut. He was bashful like a modest girl. Living as he did in the light of love, he looked transparently pure through his small, frail, fair-coloured body. Whosoever saw him was impressed with his angetic nature. But under his unassuming humble appearance there lay hid a remarkable man with some lofty aspirations and noble aims. With tears in his eyes, with the humility of a disciple in his heart, with the silence of a maiden and with the will of a conqueror this angelic student was toiling like a soldier day and night in the temple of knowledge, who was always ahead of his fellows. His study was vast. The amount of knowledge on literary and philosophic subjects that he commanded as a Swami, was marvellous. It seemed as if he was acquainted with the whole range of human thought.

At the age of about twenty, he became M.A. in Mathematics. He served in the same Forman Christian College as a lecturer and a Professor for four years. He left the job and became a recluse at the age of twenty six. Besides passing the University Examination with great credit and securing highest places and scholarships in Maths., he was very fond

of the writings of Hafiz Maulana Roomi Maghrabi, Umar Khyam and other Sufi Masters of Persia. He had waded through the whole literature of philosophy both Eastern and Western. He had read a lot about Upanishads during his college days and was enamoured of the beauties and sweetness of Hindi, Urdu and Punjabi poets.

The rigour of circumstances and intense work had told on his health. When he came out as an M.A., everybody wondered how could life suffer to remain linked to the skeleton of a body which he carried about. There was hardly any flesh on his bones. His head rested on a thin bony crany neck. His voice then was hoarse and he could hardly speak properly. He was physically so weak. But then he resolved to have a strong body. By putting himself through a regular course of physical exercise and taking lot of milk he regained his health within a short time. Eventually out of a thin and frail body, he managed to merge a strong man of stag-like nimble activity. He was a great and swift walker, who could walk more than forty miles a day as a Swami in the Himalayan hills. In the United States of America he won a forty miles race, which he ran out of fun in competition with some American soldiers. He scaled Gangotri and Badrinath Peaks Clad in a small strip of loin cloth and a blanket. He crossed from

Jamnotri to Gangotri through glaciers. He lived in snows, slept in caves in thick dreary jungles all alone. The mountain people whom I met and talked with believed that Swami Ram was a Deva (god). At night he would leave his Asana and go roaming in the dark jungles defying death and fear. Those who had seen the Swami as a starving youth of an extremely frail body, when he was a student at Lahore could not possibly recognize that wanwhite emaciated face, in this wild man of the woods, so fearless, so bold, so vehement, so strong and so roseate. His face was no full, beautifully tinted and his eyes half closed with divine intoxication. With all this exuberance of physical and spiritual energy, Swami Rami presented to the world the masterpiece of his life-work namely, his own personality.

His personality may be described as explosive. He would remain silent for months together, as if he had nothing to say. He remained merged in joy. All of a sudden he will burst out like a volcano and give out his thoughts in a wild manner. Whenever he spoke or wrote one could be sure of getting something very refreshing and original. He could not remain long in society. He used to run back to the mountaineous solitudes to recover himself, where he would keep peace with running waters, with glorious sky and would lie on rocks for hours together with

his eyes closed and his body thrown in the sunlight,

Swami Rama's highly cultivated emotion formed another attractive feature of his personality. Deep sincerity rained down from his eyes in abundance. His sweetness was irresistible. Mohammadans as well as Hindus loved him alike. The people of different races could see and recognize in this man called Swami Ram. Some family likeness with themselves. Americans called him an American, Japanese called him a Japanese, Persian saw a Persian in him.

To see Swami Ram was to feel inspired with new ideals, new powers, new visions and new emotions.

Another attractive feature of his personality was his bold independence of thought, his great towering intellect. Whatever he thought, he gave it a practical shape. He used to say that he believed in Experimental Religion. According to him the act of living consists in luminous belief. Theology has very little to do with the inner religion of the living man. If you are a living man, test the truth by your own experience. Just as in science authority has little weight in arriving at truth, similarly in religion also authority should have little or no weight and religious truth must be everybody's own and personal property through self-realization. Everyone must go to God through the failures and successes of his own life. Life itself is the greatest revelation.

After spending two years in the Himalayas, came down to the plains burning with missionary zeal for scattering the joy that he had found in himself. He sailed for Japan from Calcutta in 1903 and was in Japan for about a fortnight and was invited twice to speak to Japanese audiences. A Christian paper of Tokyo spoke in high terms about his personality and announced him as the "most enthusiastic apostle of Vedanta."

On meeting Swami Rama for the first time Dr. Takakuthsu, Professor of Sanskrit and Eastern Philosophy in the Tokyo Imperial University said to me that though he had many opportunity to see so many Indian Sadhus and Pandits at Professor Max Muller's residence in England and also at Germany, yet he had seen no man like Swami Rama. He was the perfect embodiment of Vedant philosophy. Mr. Kinya Hirai, the well-known Professor of Tokyo, who was the representative of Buddhism in the Parliament of Religions which was held in Chicago, U.S.A. said that he was reminded of the Buddhistic period of Indian history when he conversed with the Swami and always remembered Swami Rama as the "Truly Inspired Rama."

Swami Rama left Japan in November 1903 for San Francisco. He was in the United States for two

years. He lived most of the time In solitude. He lived a very simple life, carrying his own fuel on his head from the forest. People of California were struck with his simplicity and indifference with which he treated his eulogies on his work and life and threw hundreds of newspaper cuttings into the Sacramanto river which they had collected with great efforts to present to the Swami. He made a lasting impression on the Americans. On his way back to India, he visited Egypt and lectured in one of the largest mosques before a Mohammadan audience in Persian.

He brought two ideas with him, when he returned to India in 1905 :—

1) The need of organization in every department and activity of life and

2) The need for united work.

These two points he elaborated in a series of lectures give at different places in the United Provinces.

One day while bathing in the Billing Ganga near Tehri Garhwal Swami Rama was accidently drowned in October 1906. The last words which he wrote, only a few minutes before his sad occurance were in his vernacular. Its substance in English is, "Oh death ! Take away this body. I have many more

bodies to live with. I can afford to live happily wearing the silver threads of the morn and the golden rays of the sun. I shall roam free, I shall be dancing happily in the waves of the sea. I came down from the tops, knocked at doors, awakened the sleeping ones consoled one, wiped the tears of another, covered some, while took of the veils of others. I touch this and I touch that, I doff my hat and off I am. I keep nothing with me. Nobody can find me.

Thus, he clearly foreshadowed the end. A great-man was thus taken away by the Banga, when he was only thirty-three years old. He intended to write a book on the "Beauties of Vedic literature" and other on "The Dynamics of Mind" the books that now lie in his soul.

Special Report on the Spring & Maha Shivratri

SATSANG TOUR OF

H. H. Supreme Saint

Hazur Manav Dayal Ji Maharaj

by

ACHARYA SHABDANAND

Before I give a detailed account of the special spring and Maha Shivratri Tour of the Supreme Person Param Sant Manav Dayal Ji Maharaj, I would like to tell you that the Supreme Saint Perfect Master, Perfect Incarnation of the Supreme Being, Data Dayal Ji Maharaj was born on the Maha Shivratri day which fell on the 23rd February 186(. Again, on the 23rd February 1939, the Maha Shivratri day, he ordered for 40 litres of cow-milk, bathed in it and after going in deep meditation for a few hours, he left his physical body. In 1990, again, Maha Shivratri fell on the 23rd February, on the hundred thirtieth Anniversary of Data Dayal Ji Maharaj. H. H. Hazur Manav Dayal Ji Maharaj decided to celebrate this occasion of the 130th Anniversary of the Guru of his Guru, Data Dayal Ji Maharaj in a special way at Radhaswami Dham as the successor

and Sat Guru of the age. Radhaswami Dham is situated in a beautiful set up mid way between Allahabad and Varanasi, on the main G.T. Road, and founded by Data Dayal Ji Maharaj himself. This auspicious occasion was celebrated on the 22nd, 23rd and 24th February 1990 under the auspices of the Managing Committee of Radhaswami Dham on the instance of H. H. Manav Dayal Ji Maharaj. The Satsangis and Saints of Manavta Dharma were cordially invited and a grand feast was served to all the participants on these days.

Almost all the Acharyas appointed by H. H. Param Dayal Ji Maharaj and H. H. Manav Dayal Ji Maharaj were invited to participate. The response was very encouraging and for the first time in fifty one years, after the departure of Param Dayal Ji Maharaj, Radhaswami Dham was humming with life as hundreds of Satsangis from far and wide including Andhra Pradesh, Madhya Pradesh, Maharastra, Rajasthan, Punjab, Haryana, Bombay and even a satsangi from California (U.S.A.) participated on this occasion. The American Acharya Mrs. Thelma Carter was expected to be present, but she could not make it on account of unavoidable circumstances. You would be pleased to know that thousands of satsangis in America, England, Canada, Africa and Trinidad are not only associated with Hazur Manav Dayal Ji

Maharaj, but also respect. Param Dayal Ji Maharaj and Data Dayal Ji Maharaj about whose teachings they are fully aware.

Every discourse of Hazur Manav Dayal Ji Maharaj everywhere is always preceded by the spiritual verses of Data Dayal Ji Maharaj. Hazur Param Dayal Ji Maharaj used to say to Hazur Manav Dayal Ji Maharaj "Manav, may you live long. Data Dayal will always be with you." At one occasion he was so much over-whelmed with affection that in an audience of thousands of people he stood up in front of Hazur Manav Dayal Ji Maharaj, who was already standing with folded hands, and said to him sheding tears, "Manav, you are my Data Dayal." Under these circumstances I am overwhelmed with the deep love and affection that the Supreme Saint Hazur Manav Dayal Ji Maharaj has for the Supreme Person Data Dayal Ji Maharaj, I sincerely believe that Data Dayal Ji Maharaj himself called Hazur Manav Dayal Ji Maharaj from Param Dham to fulfill the Mission of Manavta Dharma. Param Dayal Ji Maharaj has searched out Hazur Manav Dayal Ji Maharaj in America by the blessings of Data Dayal Ji Maharaj. Hazur Manav Dayal Ji Maharaj is very beautifully and successfully fulfilling the Mission as a Supreme Master of our time in the tradition of Manavta Dharma. What ever has been written and published by Data Dayal Ji Maharaj, is being explained

and taught by Hazur Manav Dayal Ji Maharaj in a unique manner in which none else in the world can do today. His explanations are deeply spiritual and touching. He is engaged in this Mission day and night.

O my dear satsangi sisters and brothers ! the Supreme Saint and Sad Guru Param Dayal Ji Maharaj has endebted ourselves greatly by selecting Hazur Manav Dayal Ji Maharaj as his successor. As a result of this Manavta Dharma, in the lineage of Radhaswami faith, is making fast progress and is being adopted all over the world, fulfilling the prophetic statement of Hazur Param Dayal Ji Maharaj who wrote to Hazur Manav Dayal Ji Maharaj, "I have full faith that by your Pure-Self the Manavta Dharma will spread all over the world without any doubt. The constant efforts and selfless devotion of Hazur Manav Dayal Ji Maharaj are responsible for this progress. All of us see the Supreme Saint Param Dayal Ji Maharaj in the person of Hazur Manav Dayal Ji Maharaj. A few years ago Sant Tara Chand Ji declared in a Dashahara discourse, "I can guarantee that Manav Dayal Ji is Perfect—Perfect—Perfect. I have seen his sacrifice and I am empressed that he left a life of luxury in America to fulfill the Mission of his Sad Guru." I, therefore, consider those people to be misled who separate Manav Dayal Ji Maharaj

from the person of Param Dayal Ji Maharaj. In the same manner those people are under great illusion who differentiate between Data Dayal Ji Maharaj and Param Dayal Ji Maharaj. Data Dayal Ji Maharaj and Param Dayal Ji Maharaj are potentially present in the Living Supreme Master Hazur Manav Dayal Ji Maharaj according to the tenets of Radhaswami faith. I am so much endebted to Hazur Manav Dayal Ji Maharaj that my pen is unable to express my feelings as they are in my heart. I would, therefore, like to give you some detail about the satsangs of Hazur Manav Dayal Ji Maharaj.

H. H. Hazur Manav Dayal Ji Maharaj has been on constant tour since the 22nd July 1989. He was on foreign tour from the 28th July to 6th October 1989. Having left Bhagya Mata Ji in the United States of America with her younger son Dr. Darshi for convalescence in Atlanta, Georgia, he returned to India on the 6th of October '89 because of his engagements and tour in India. After fulfilling his commitments of seven weeks constantly, he left again for U.S.A. and Trinidad on the 25th November. He returned from that tour to Delhi the 24th January 1990. After delivering Satsang in Salwan Public School, Delhi in the evening of the 24th January 90 he returned to Hoshiarpur on the 25th January

'90 because of the monthly Satsang scheduled to be delivered in the Manavata Mandir on the 28th January '90. He left for Delhi on the 28th January and proceeded on Southern tour by A.P. Express on the 29th January alongwith Bhagya Mata Ji, Ach. K. P. Varma, Ach. K. M. Tiwari and Dr. Chandra Negi of Batala. They arrived in Hanamkonda (A. P.) on the 30th January to participate in the Spring-Sant-Sammelan the details of which will be given to you by H. H. Hazur Manav Dayal Ji Maharaj in the regular series of His monthly messages. I will confine myself to a brief account of the Southern tour and a specical account of the celebration of 130th Anniversary of Data Dayal Ji Maharaj at Radhaswami Dham.

In Hanamkonda the 36th Sant-Sammelan (Conference of Saints) was held as usual. This annual function was started by Param Dayal Ji Maharaj. He continuously went to Hanamkonda every year and delivered his spiritual discourses. After Param Dayal Ji Maharaj left his physical body, Hazur Manav Dayal Ji Maharaj has constantly been attending the Vasant Sant Sammelan at the sacred Temple of Data Dayal Ji Maharaj in Hanamkonda every year. Ordinarily Hazur Manav Dayal Ji Maharaj has been honoured and welcomed everywhere on these occasions. But

this year the special arrangements and the welcome were majestic and unique. The entire venue was illuminated with electric lights and the illuminated statue like picture of Param Dayal Ji Maharaj was so beautiful to look at. The group-songs performed by the Chintal Basti group-singers were inspiring. The statement of Hazur Manav Dayal Ji Maharaj, that the Temple of Hanamkonda is a holy place of pilgrimage, is perfectly true.

The satsangs were attended by larger numbers of people than the last year. Generally the number of the audiences in the Satsangs of Hazur Manav Dayal Ji Maharaj is ever on an increase. During the delivery of Satsang by Hazur Maharaj people attended in a pindrop silence and well in rapport with His Holiness Manav Dayal Ji Maharaj, as if in a trance. The discourses were of a very high level, delivered in a very simple language which reminded the Satsangis of the Satsangs of Param Dayal Ji Maharaj. I would like to repeat here that in the tradition of the religion of Saints and especially in the tradition of the Radhaswami faith started in 19th century by Hazur Swami Dayal Ji Maharaj, the current of nectar-like discourses has been flowing continuously in unmitigated pace. The reason for it is that every Supreme Master in

this tradition appointed the next Supreme Master during his own life time. And the Supreme Perfect Master of every generation, besides inheriting all the qualities of the previous Masters, has also exhibited a new quality thereby improving the spiritual flow for the benefit of the mankind. After Swami Ji Maharaj, Hazur Saligram Ji Mahataj presented Radhaswami faith in a unique manner, as a result of which thousands of people were benefited. It was he who systematized the Radhaswami faith and clarified as to how an individual could attain perfection by adopting Surat-Shabda Yoga irrespective of caste, colour, race and intellectual background.

Swami Ji Maharaj laid emphasis on the unique relationship of Guru—the Preceptor and disciple—the shishya. He showed the way to an ideal relationship of the Master and the pupil. Once Swami Ji Maharaj told Saligram Ji Maharaj to restrain from seeing him for one week. Saligram Ji Maharaj, being overwhelmed by his strong desire to see his Master, could not help violating the order of the Master and within the week he climbed a ladder and peeped at the Master Swami Ji Maharaj through the ventilator. Swami Ji Maharaj noticed it and called him inside the room. In order to punish him Swami

Ji Maharaj bet Saligram Ji Maharaj with his wooden sandal on his head as a result of which his head bled profusely. Then Swami Ji Maharaj put his hand on the head of Saligram Ji Maharaj compassionately. At this Saligram Ji Maharaj instantaneously composed and recited the following verse :

'गुरु धरा शीष पर हाथ, मन क्यों सोच करे ।
गुरु रक्षा तेरे साथ, क्यों ना, धीर धरे ॥'

'When Guru has placed his hand in recompense,
O mind ! why don't you have full confidence ?
Why are you worried O my mind !
When Guru is Protector, Compassionate and kind.'

This type of ideal relationship of the Master and disciple was sponsored by Swami Ji Maharaj. Hazur Saligram Ji Maharaj presented the relationship of father and son as an ideal relationship between the Master and the disciple. He considered his disciples to be his children. The truth is that any pattern of worldly love would be helpful between the Master and the disciples. The idea is the closeness of the Master and the disciple.

Data Dayal Ji Maharaj, who was declared as the Vyas of Radhaswami faith by Hazur Saligram Ji Maharaj, also was a most influential Perfect Master in this lineage. Whereas Hazur Saligram Ji Maharaj encouraged the relationship of the Master and the disciple in the form of father and son, Data Dayal Ji Maharaj sponsored the relationship of fraternity

between the Master and the disciple. He used to address the Satsangis as brothers, e.g. he would say :

'सुनो मेरे भाई, कथा यह पुरानी ;
नहीं जानते आज कल जिसको ज्ञानी।'

'O my brother ! listen to this old story ;
Which the modern intellectuals do nht know,'

In this very tradition he gave a new direction to the relationship of the Master and the disciple. This new approach consisted in respecting the disciple on the part of the Master as Supreme Person so that Guru would bow his head at the feet of his disciple. He recognized Pararm Dayal Ji Maharaj as the future Perfect Master. Therefore in 1918 he gave a special initiation to Pt. Faqir Chand Ji Maharaj, offered him coconut, five paise, garlanded him and bowed his head at the feet of Pt. Faqir Chand Ji Maharaj saying, "You are the Perfect Master of futnre. You should start initiating aspirants into the religion of Saints and also start delivering Satsangs. You will meet the Supreme Being in the Satsangis. Data Dayal Ji Maharaj wrote hundreds of verses enlogizing his disciple Pt. Faqir Chand Ji Maharaj and declared him as his emancipator.

Param Dayal Faqir Chand Ji Maharaj discovered Hazur Manav Dayal Ji Maharaj to be his successor and inheritor of the heredity of Sat Guru Wakt (the Master of the Age after his search for thirty years.

Param Dayal Ji Maharaj encouraged the relationship between the Master and the disciple as that of friend. He said, "I address you as friends and hence I love you and also chastise you on proper occasions. I want to tell you that the next Perfect Master, my successor would rule over you." As a matter of of fact, his words became true because Hazur Manav Dayal Ji Maharaj rules over our hearts and souls with deepest love. His very name "Ishwar" signifies as the Ruler of the World. Param Dayal Ji Maharaj had declared in 1976 that Hazur Manav Dayal Ji Maharaj would be the future Vivekanand of Radhaswami faith. Data Dayal Ji Maharaj had also declared that his spiritual grandson would reestablish Radhaswami Dham.

You all know that Radhaswami Dham in Gopiganj is situated between Allahabad and Varanasi on the main G. T. Road. As already stated, Hazur Manav Dayal Ji Maharaj had accepted the invitation for special Satsangs on the 22nd, 23rd and 24th February 1990 in connection with the special celebration of the 130th Birth Anniversary of Data Dayal Ji Maharaj at Radhaswami Dham.

After his tour to Andhra Pradesh, Aheri, Nagpur, Ujjain and Itarsi, Hazur Manav Dayal Ji Maharaj arrived in Allahabad on the 21st February '90 at the residence of Sri Sumitra Kumar the maternal

grandson of Data Dayal Ji Maharaj. The older maternal grandson of Data Dayal Ji Maharaj, Dr. R. R. Singh had also arrived there. Both the worthy brothers welcomed Hazur Manav Dayal Ji Maharaj. After delivering Satsang in Allahabad, Hazur Manav Dayal Ji Maharaj arrived in Radhaswami Dham the next morning. Hundreds of satsangis from far and wide had already arrived at the Dham. Ach. Capt. Lal Chand had arrived from Rajasthan and he had been delivering Satsangs at Dham from the 19th February '90 because he had been invited to do so by Hazur Manav Dayal Ji Maharaj. His Satsangs were most inspiring for every body. The gathering hundreds of Satsangis and their co-dining presented a very inspiring seen. It is true that such a huge gathering had occured for the first time after fifty-one years since the departure of Data Dayal Ji Mahraj to the Supreme Abode in 1939.

The Satsangs delivered by Maharaj Ji kept every one spell-bound as if in a trance. The other important participants on this occasion were Ach. K. P. Varma from Delhi, Ach. Mohan Dayal Ji from Mishrik, Ach. K. M. Tiwari from Lucknow, Ach. S.N. Bhatta from Ujjain, Ach. Smt. Rama Bai also from Ujjain and myself.

After the enchanting satsangs for two da, people felt as if they have been rejuvinated. Radhaswami Dham is no doubt most spiratually vibrated

It is a place of pilgrimage and the centre of holiness. Hazur Manav Dayal Ji's Satsangs exalted its spiritual significance. It is hoped that hence-forward Radhaswami Dham will be humming with satsangs and allied activities, because Hazur Manav Dayal Ji Maharaj has taken up the entire responsibility of the development of the Radhaswami Dham both with regard to the construction of Satsang Bhavan, Guest House and other buildings as well as the revival of spiritual activities.

This resolve was taken at the meeting of the Board of Trustees of the Radhaswami Dham held in the morning of the 24th February 1990, within the premises of the Radhaswami Dham in the room of Hazur Manav Dayal Ji Maharaj. The Board of Trustees has been expanded and new Trustees have been added under the Supreme Patronage of the Perfect Master Pa am Sant Sat Guru Hazur Manav Dayal Ji Maharaj. An all-round development of the centre of Radhaswami Dham has been planned. About Rs. 30,000/-for this purpose were immediately offered and promised at the spot. One of the doners worth mentioning is Sri Rasool Azad of Bombay who is a great devotee of Param Dayal Ji Maharaj and a perfect practitioner of Sant Mat inspite of his Islamic religious background. A few important resolutions were passed in the meeting, according to one of which, any h donations offered by any outsider any Achar

Satsangi interested in the development of Radhaswami Dham, shall have to be approved by the Board of Trustees, There is no doubt that Hazur Manav Dayal Ji Maharaj, the unique successor in the linage of Data Dayal Ji Maharaj and Param Dayal Ji Maharaj, who is rendering yeomen service to humanity by delivering spiritual discourses of the highest order all over the world. He is no doubt the Perfect Incarnation of God as Love. He is the Supreme Master of our time. It is our duty that the Sad Guru who has been discovered and saught by H. H. Param Dayal Ji Maharaj, should be given full co-operation with devotion and love in the fulfillment of the Divine Mission of the upliftment of the humanity by the practice of Radhaswami faith as the Religion of Humanity.

I beseech all the Satsangis and Acharyas of Manavata Dharma that they should all come together to the refuge of Hazur Manav Dayal Ji Maharaj sinking all their personal differences and discords. I appeal to all the followers and Acharyas in the tradition of Data Dayal Ji Maharaj who had recognized and accepted Param Dayal Ji Maharaj as his successsor and Sat Guru Wakta to come under the banner of Manavata which Hazur Manav Dayal Ji Maharaj is carrying round the world. My dear brothers, you should not forget that there is always one—only one—Sad Guru of the time, although sants and gurus are many.. If you come to the refuge of the Perfect Master of the time—Hazur Manav Dayal Ji Maharaj. you will, without fail, attain spiritual Perfection as well as success in your worldly life.

Radhaswami to all.

राधास्वामी नाम-ध्वनि

राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी ।
अलख अगम और अनामी ।
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी ।

परम सन्त का रूप धरा, जीवों पर उपकार किया
सीधा सच्चा मार्ग दिया, आदि घर पद धाम
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी

बन कर आये परम फ़कीर, हरने सब जीवों की पीर
परम दयालु दानी वीर, नाम दान के दानी
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी ।

राम भी हो और कृष्ण भी तुम ।
तुम महावीर और बुद्ध गौतम ।
अक्षर ब्रह्म और पुरुषोत्तम, सब नामों में अनामी ।
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी ।

मानवता का किया प्रचार, निज अनुभव का दे दिया सार
ऐसे गुरु को बारम्बार, नमामि नमामि नमामि ।
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी ।

दाता दयाल के प्यारे तुम, मानव के रखवारे तुम ।
निर्गुण और सगुण भी तुम, सब के अन्तर्यामी ।
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी ।

Regd. No. 26265/74
MANAV MANDIR

MARCH 10th 1990
NWHSP—7

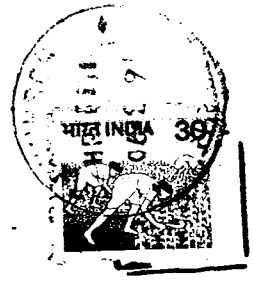

Address

H/E

415 President Radha Swami
Sat Sang Bhawan via Pitlam
Nizam SagarDistt. Nizamabad A.P.

From :

Phone : 2639

MANAVTA MANDIR
SUTEHRI ROAD,
HOSHIARPUR - 146 001

Shiv Dev Rao Press, Manavta Mandir, Hoshiarpur (Pb.)